अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00

❑ अंक : 06

❑ 1-15 नवंबर, 2013

❑ वर्ष : 37

जनता को रूठने का अधिकार है

जो सरकार वचन देकर उसे तोड़ देती है, उसका त्याग करना अनादि काल से चला आ रहा एक उपचार है। हमें अपने इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण सहज ही मिल जाते हैं, जब राजा के अत्याचार से पीड़ित हो जनता ने राजा का त्याग कर दिया हो। जनता को रूठ जाने का अधिकार है।

यूरोप में दुष्ट राजा का जनता हनन कर देती है। हिन्दुस्तान में जब जनता अकुला जाती है तब उसका राज्य छोड़ कर चल देती है। मेरे द्वारा सुझाया गया असहकार इसकी अपेक्षा हलका त्याग है। सर्वथा त्याग करना यह असहकार की पराकाष्ठा है। हम रूठना भी भूल गये हैं।

यदि ऐसा हो तो यह हमारी अधम स्थिति का परिचायक है। जब गुलाम अपनी गुलामी को भूल जाये तब उसे बन्धनमुक्त करने का उपाय बचा रहता है।

इस महत्कार्य में सब एकाएक एकमत हो जायें, ऐसा कठिन है। हमें धैर्यपूर्वक विरोधी मत रखनेवाले व्यक्तियों को शिक्षित करना पड़ेगा। उनके प्रति अरुचि प्रकट करके, उनका बहिष्कार करके हम उनका मत-परिवर्तन तो नहीं कर सकते, उन्हें दलीलों से विनयपूर्वक समझा-बुझाकर ही अपनी ओर करना होगा। ऐसा करके ही हम सही अर्थों में प्रशिक्षित कर सकेंगे।

(नवजीवन, 11-7-1920)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 06
1-15 नवंबर, 2013

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविता... 2
2. दंगे और अहिंसक क्रांति... 3
3. न अन्य पन्थाः 4
4. मरुभूमि का भाग्यवान... 7
5. पर्यावरण एवं विकास... 9
6. प्यास बुझाने की आस... 10
7. जीरो बजट खेती : एक... 11
8. गुजरात : समृद्धि से... 12
9. उपजाऊ मिट्टी खाते शहर... 13
10. क्या हिंसा से क्रांति... 14
11. नर्मदा तट पर जल... 17
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. बच्चों के व्यक्तित्व विकास... 20

कविता

प्यारे बापू फिर से आओ

❑ प्रो० बसन्ता

प्यारे बापू फिर से आओ,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

भ्रष्टाचार निहाल हो गये।
नेता मालामाल हो गये,
हम सब तो कंगाल हो गये,
दीन दुखी बेहाल हो गये,
देखो चारों तरफ घोटाला,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

एक से बढ़कर एक विराट,
मिलेंगे भ्रष्टाचार सम्राट,
देख-देख कर तुम रोओगे,
बीती यादों में खोओगे,
चेहरा हो जायेगा काला,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

नेताओं को वोट चाहिये,
देश बिके पर नोट चाहिये,
दुर्बुद्धि, दुर्भाव चाहिये,
जनता में बिखराव चाहिये,
उनको समझो विष का प्याला,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

नेताओं का पेट बड़ा है,
सचमुच इनका रेट बड़ा है,
भाषण से ये सदा रिझायें,
ये जो चाहें सो खा जायें,
खा जायें सारा का सारा,
सबके सब हैं नटवरलाला,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

रघुपति राघव राजा राम,
नेता का इससे क्या काम।
पतित पावन सीता राम,
देश लूटना उनका काम।
हेरा-फेरी और घोटाला,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

प्यारे बापू फिर से आओ,
जनमानस दुर्बुद्धि भगाओ,
ईश्वर से हम यही मनाते,
फिर से तुम पैदा हो जाते,
स्नेह-सुधा गंगाजल होकर,
जन-मन कलुष तमस हर धोकर,
देते निर्मल ज्योति उजाला,
देखो अपना देश निराला,
नेताओं ने क्या कर डाला!

संपादकीय

दंगे और अहिंसक क्रांति की चुनौती

मुजफ्फरनगर के दंगों ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सदियों से जो तहजीबी एकता थी, उसे छिन्न-भिन्न करने का प्रयास किया। श्री महेन्द्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में जो किसान आंदोलन चला था, उसने इस तहजीब को और सुदृढ़ किया था। किसान शक्ति एकता की शक्ति थी, राष्ट्र-निर्माण की शक्ति थी। इस एकता एवं राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया को कमजोर करने के लिए, इन दंगों को फैलने दिया गया।

कुछ विश्लेषकों का विचार है कि ये दंगे सुनियोजित थे तथा सन् 2014 में होने वाले लोकसभा चुनाव के मद्देनजर किसानों को खेमों में बांटने की साजिश का हिस्सा थे। कुछ ने तो यहां तक कहा कि गुजरात मॉडल को उत्तर प्रदेश में लागू किया जा सकता है।

दंगों से वोट की फसल लहलहायेगी, यदि ऐसी सोच किसी भी कोने में है, तो हमें वोट को राजनीति के इस पहलू को गंभीरता से लेना होगा।

दंगे क्या करते हैं? एक अत्यधिक उत्तेजनापूर्ण माहौल का निर्माण करते हैं तथा दूसरे पक्ष के व्यक्ति की अकारण हत्या। लूटपाट को औचित्य प्रदान करते हैं। दंगे समाज को नफरत के खेमों में बांटने का भी काम करते हैं। प्रत्येक खेमा, दूसरे खेमें को नफरत व शक की नजर से देखने लगता है। यह भी प्रचारित किया जाता है कि अन्याय हमारे ही खेमें के साथ हो रहा है, अतः हमें और अधिक संगठित होना चाहिए।

नफरत के विचार एवं नफरत की चेतना दोनों खेमों को मजबूत बनाने में मदद करती जाती है। यह नफरत की चेतना एक बड़े झूठ पर खड़ी होती है तथा राष्ट्रीय एकता एवं मानवीय एकता के मूल्यों के पूर्ण अस्वीकार पर विस्तारित होती जाती है। इसलिए दंगों के माध्यम से वोट बटोरने की राजनीति करने वाले राष्ट्र-निर्माण विरोधी तथा मानवता विरोधी भी हैं।

यदि हम सन् 1985 से 1993-94 तक के समय में घटित हो रही घटनाओं को याद करें, तो कुछ बातों को साफ दृष्टि से देखने में मदद मिलेगी। देशभर में किसान ताकत मजबूत हो रही थी तथा वह भी राजनीतिक दलों के बाहर जनता की ताकत, गांव की ताकत के रूप में मजबूत हो रही थी। दूसरी ओर पूंजीवाद अपने फैलाव के लिए, दुनिया भर में कारपोरेटी साम्राज्य के वैश्वीकरण, निजीकरण तथा उनके पक्ष में नीतियों के उदारीकरण के लिए दबाव बढ़ाता जा रहा था।

किसान सत्ता, लोकसत्ता के निर्माण का आधार भी बन रही थी तथा पूंजीवादी विस्तार को चुनौती देने की स्थिति में भी आ रही थी। ऐसे में यदि यह संघर्ष एक ओर लोकसत्ता/किसान सत्ता/ग्रामसत्ता तथा दूसरी ओर पूंजीवादी सत्ता के बीच होता, तो पूंजीवाद के विस्तार को रोका जा चुका होता। जल-जंगल-जमीन-खनिज आदि के दोहन तथा उनसे जुड़े समुदायों के शोषण का जो अभियान तीव्र हुआ उस पर अंकुश लगाया जा चुका होता।

लेकिन उसी दौर में शाहबानों केस के सवाल को, रामलला मंदिर में ताला खुलवाने के सवाल को, बाबरी मस्जि के सवाल को तथा अन्ततः बाबरी मस्जिद के ढहाने के सवाल को राजनीति में जिस तरह उपयोग में लाया गया, उससे लोकसत्ता की ताकतें कमजोर हुईं तथा कारपोरेटी साम्राज्य के वैश्वीकरण, निजीकरण तथा उनके पक्ष में नीतियों के उदारीकरण का मार्ग आसान हो गया।

पिछले दो वर्षों से भारत में, लोकसत्ता पुनः अपने आपको भिन्न रूपों में प्रकट करती रही है। इससे राष्ट्र-निर्माण की तथा लोकसत्ता के निर्माण की शक्तियां संगठित होती जा रही हैं। जल-जंगल-जमीन-खनिज के दोहन तथा किसानों, मजदूरों, आदिवासियों, मछुआरों, श्रमिक महिलाओं आदि के शोषण के विरुद्ध भी आंदोलन अधिक गतिशील हुए हैं। दूसरी ओर सन् 2008 के बाद से वैश्विक पूंजीवाद निरंतर जिस संकट से जूझ रहा है, उससे उबरने के लिए उसे दोहन व शोषण की संस्थाओं को और कारगर बनाना होगा। ऐसे में दंगों का नेटवर्क उनके लिए एक बड़ा मददगार अघोषित साथी की तरह काम कर सकेगा।

भारत में आंदोलनकारी शक्तियों को, इन चुनौतियों को गंभीरता से लेना होगा। अब हम ऐसे दौर में आ गये हैं, जब न केवल पूंजीवाद के विकल्प को खड़ा करने में अपनी शक्तियों को एकजुट करना होगा। बल्कि राजनीति के विकल्प को खड़ा करने में भी एकजुट होना होगा। राजनीति के विकल्प के नाम पर छोटी-मोटी पार्टी बनाने या लोक-उम्मीदवार जैसे विचार का इक्का-दुक्का प्रयोग, राजनीति के विकल्प को खड़ा करने के अभियान को कमजोर करेगा। लोक-भागीदारी वाली राजनीति का मतलब यह नहीं होगा कि लोक अपने प्रतिनिधि के माध्यम से सक्रिय रहें। बल्कि इसका मतलब यह होगा कि लोकसत्ता का निर्माण, उसके सभी आयामों के साथ हो तथा दूसरा यह कि देश की नीतियों के निर्माण में तथा देश की समस्याओं को सुलझाने में लोक-शक्ति का प्रत्यक्ष-सक्रिय नियंत्रण बना रहे। लोकशक्ति के प्रत्यक्ष सक्रिय नियंत्रण का दायरा जैसे-जैसे बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे राजनीति के विकल्प का स्वरूप उभरता जायेगा। बिमल कुमार

न अन्य पंथाः

❑ डॉ. रामजी सिंह

सर्वोदय-विचार और आचार के सर्वोच्च राष्ट्रीय मंच पर जहां मैं अपनी व्यक्तिगत सीमाओं के कारण सहम रहा हूं, वहीं मैं अपने अन्दर के भाव को निर्वैर, निष्पक्ष तथा निर्भीक दृष्टि से उपस्थित करना अपना परम सौभाग्य मानता हूं।

सर्वोदय-विचार किसी व्यक्ति या मठ की कारा में कैद नहीं है, यह संकीर्ण धर्म या राष्ट्रवाद की सीमाओं में भी आबद्ध नहीं है। अंग्रेज कवि *वर्ड्स वर्थ* की *चंडूल पंछी* की तरह हम भले किसी गांव, किसी नगर, किसी मुहल्ले या किसी खादी संस्था या आश्रम में कार्य करते हों लेकिन हमारी दृष्टि वैश्विक हो।

यह विश्व दृष्टि कोई स्वप्नदर्शी विचार नहीं है, बल्कि यह आज के आणविक युग की अनिवार्यता है। इसके बिना मानव-सभ्यता का अस्तित्व सोचा भी नहीं जा सकता। मानवीय सभ्यता के अब तक के मानक यानी व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक धर्म एवं संकीर्ण राष्ट्रवाद के दिन लद चुके हैं। इनका या तो सुधार करना होगा या फिर नया विकल्प ढूंढ़ना होगा। धर्म एवं सम्प्रदाय के नाम पर लगभग 7500 छोटे-बड़े युद्ध हो चुके हैं, जिनपर अभी भी पूर्ण विराम नहीं हुआ है। एक ही ईसाइयत धर्म में प्रोटेस्टैंट और कैथोलिक के बीच 100 वर्षों तक युद्ध चले। आज अपने देश में भी बापू की शहादत तथा देश के विभाजन के बाद भी किश्तवार से मुजफ्फरनगर तक का यह घृणित पागलपन जारी है। इसका समाधान न तो विश्व हिन्दू परिषद या बजरंग दल के पास है, न मुस्लिम ब्रदरहुड या इंडियन मोजाहीउद्दीन के ही पास है और यदि माफ करें तो किसी राजनैतिक दलों के पास भी नहीं है। क्योंकि वोट उनके लिए उनका परम धर्म है। हम सर्वोदय के लोग भी शांति सेना के कार्य एवं संगठन को लगभग समेटकर; विशेष रूप से बौद्धिक चर्चा में लगे हैं।

इन साम्प्रदायिक धार्मिक कलहों का मुख्य कारण राजनैतिक वोट आदि को छोड़कर मेरी दृष्टि से अपने-अपने धर्म को सबसे अच्छा मानना ही है। यह अहम भावना इसकी जड़ में है क्योंकि हम धार्मिक विश्व विजय के लिए धर्म-परिवर्तन येन-केन-प्रकारेण से करने को अपना धार्मिक अधिकार मानते हैं। कोई व्यक्ति स्वेच्छा से किसी धर्म को अपनावे या नास्तिक रहे, इसमें हमारा कोई विरोध नहीं लेकिन जब वह लालच या जबर्दस्ती या धोखेबाजी से धर्मान्तरण कराकर अपने धर्म को बढ़ाने का गौरव करता है तो इसे गैरकानूनी ही नहीं अनैतिक भी समझना होगा। इससे एक कदम आगे कि अपने धर्म को सर्वोत्कृष्ट मानने का अर्थ होता है कि दूसरे धर्महीन या निकृष्ट हैं। अतः यह घृणा फैलाने के लिए काफी है।

इसके लिए हमारे सामने एक समाधान आता है कि धर्म को अफीम का नशा आदि कहकर अभिशप्त कर दें या फिर धर्म-स्वातंत्र्य के नाम पर ही नहीं बल्कि नैतिकता के लिए भी धर्मान्तरण जैसी चीजों का विकल्प ढूंढ़ें।

भारतीय स्वतंत्रता के नव-जागरण काल में धर्म समन्वय की विराट चेष्टा हुई है। राजा राममोहन राय ने *''सार्वभौम धर्म''*, स्वामी विवेकानन्द ने *''विश्वधर्म''* एवं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने साम्प्रदायिक धर्म के बदले *''मानव धर्म''* का विचार दिया। रामकृष्ण परमहंस ने तो एक कदम आगे जाकर इस्लाम, इसाई धर्म और अद्वैत की धार्मिक प्रार्थनाओं एवं कुछ कर्मकांडों का अपने जीवन में अभ्यास किया। डॉ. भगवान दास ने *''सभी धर्मों की आधारभूत एकता''* नामक महान ग्रंथ लिख सभी धर्मों की मूल भावना के साम्य को प्रदर्शित किया। गांधी, विनोबा एवं सर्वोदय के प्रायः सभी आश्रमों में सर्व-धर्म-प्रार्थना ही होती है। इस समस्या का समाधान सर्वोदय-विचार साधना का अमृत है। सर्वोदय-विचार धर्म के विरुद्ध नहीं, लेकिन प्रो. गोरा, लवणम् जैसे नास्तिक भी सर्वोदय संगठनों में सम्मानित महसूस करते हैं। *''सर्वोदय सर्वधर्म-समभाव''* के विचार का पोषण करता है। एनीबेसेंट के अनुसार ''धर्म तो अंतर की भावना है। सच्चा अध्यात्म तो शुद्ध नैतिकता का ही पर्यायवाची है। जो धर्म अनैतिक है, वह आध्यात्मिक भी नहीं हो सकता।'' अतः गांधीजी ने *''नीति-धर्म'' नैतिकता की राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति के विचार को विकसित किया।* यहां तक कि उन्होंने ईश्वर की अवधारणा को भी *सत्य* का पर्यायवाची बना दिया।

परम्परागत साम्प्रदायिकता धर्मों के परस्पर विद्वेष के कारण संसार में सदियों से जो हिंसा-प्रतिहिंसा चल रही है, उसका अभी तक शमन नहीं हुआ है। लेकिन इसके अतिरिक्त भी आधुनिक सभ्यता को चुनौती संकीर्ण राष्ट्रवाद से भी उतना ही है। अपनी सत्ता के विस्तार की आकांक्षा सर्वोपरि है। एडविन टाफलर ने आज के युग में सत्ता, सम्पत्ति और ज्ञान-विस्तार में तीन लक्षण बताये हैं। वर्तमान युग में राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाएं और सहायक वैश्विक संस्थाओं की स्थापना हुई तो है लेकिन आज तक चाहे पाश्चात्य पूंजीवादी गुट हो या साम्यवादी खेमा हो, सभी सत्ता विस्तार के लिए व्याकुल हैं। राष्ट्रीय सम्प्रभुता का इन बड़े-बड़े सैनिक गुटों द्वारा अनुचित विस्तार हो रहा है। आज इंग्लैण्ड जो आधुनिक लोकतंत्र का सिरमौर समझा जाता है, वह कभी मिस्त्र पर, कभी अन्य राष्ट्रों पर हमला करता है। अमेरिका तो सत्ता के मद में स्वार्थसिद्धि के लिए कभी इराक, सीरिया आदि देशों पर आक्रमण करता है तो उधर साम्यवादी रूस ने चेकोस्लाविया, हंगरी आदि देशों पर एवं चीनी गणतंत्र ने अपने

छोटे साम्यवादी गणतंत्र वियतनाम पर हमला करने में संकोच नहीं करता। तीन युद्धों के बाद भी एक ही विरासत वाले देश दूसरे को शत्रु दिखते हैं। जो भारत स्वतंत्रता-संग्राम में एशिया और अफ्रीका को प्रेरणा एवं नैतिक नेतृत्व देता था, आज अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान को छोड़ दें; नेपाल, श्रीलंका, बर्मा आदि से भी मधुर संबंध नहीं बना पा रहा है। दक्षिण एशिया के देशों के आधार पर यदि हम कोई ढीला-ढाला भी मित्र-राष्ट्र संगठन बना पाते तो यह अशांति का क्षेत्र नहीं रहता। हमने अपने सामने दोनों वियतनाम, दोनों जर्मनी को एक होते एवं पश्चिमी यूरोप के 28 राष्ट्रों के बीच एक प्रतिरक्षा, एक संसद, एक आर्थिक नीति, एक पादपत्र आदि देखा है; तो हम इस प्रयोग का प्रयास तो कर ही सकते हैं।

विश्व-सरकार की बात अभी भले ही कुछ दूर हो, लेकिन भारत-पाक-बांगलादेश के बीच असैन्य आक्रमण संधि तो कर ही सकते हैं। राजनैतिक को छोड़ें हम सांस्कृतिक स्तरों पर भी इन देशों के बीच सद्भाव कायम कर पाते; तो एक बड़ी बात होती।

हम राजनैतिक रूप से संसदीय जनतंत्र का जप तो करते हैं लेकिन लोकतंत्र के नाम पर शुद्ध दलतंत्र और दलतंत्र के नाम पर दल से दलपतियों का शासन चलता है। यहां स्वतः तानाशाही एवं वंशवाद का स्पष्ट दर्शन मिलता है। सबसे बड़ी बात तो यह कि चुनाव भी इतना खर्चीला हो गया कि इसे लोकतंत्र के बदले धनतंत्र कह सकते हैं।

यह प्रशंसनीय है कि भारत में लोकतंत्र चल रहा है लेकिन आर्थिक लोकतंत्र के बिना पांच सालों में केवल एक दिन वोट देने के अतिरिक्त लोकतंत्र का अनुभव नहीं होता। क्या हम कह सकते हैं कि हमारे यहां जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए राज्य चल रहा है? क्या यह सही है कि इस देश की लगभग दो-तिहाई जनता गरीबी-रेखा के नीचे है? क्या संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समता का उल्लेख रखते हुए आर्थिक क्षेत्र में 10 लाख गुना तक विषमता नहीं है? यह वातावरण तो जनता का असंतोष एवं हिंसा को प्रोत्साहित करता है। चुनाव इतना खर्चीला हो गया है कि एक उम्मीदवार को करोड़ों रुपये जुटाने पड़ते हैं और यह सरकारी एवं गैर-सरकारी भ्रष्टाचार का कारण है। इन्हीं सब कारणों से गांधी ने इन संसदीय प्रजातंत्र को वेश्या एवं बांझ कहा था। क्या इस प्रचलित लोकतंत्र के बदले हम गांधी-सर्वोदय के बताये जनता के जनतंत्र के लिए प्रयास नहीं कर सकते हैं? यदि अभी यह सम्भव नहीं हो सके तो क्या हम स्वस्थ मतदाता प्रशिक्षण भी नहीं कर सकते? आज हम जो जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र के नाम पर या पैसे, पद के लालच से अपने पवित्र मतों को बेच देते हैं। क्या उन्हें इसके विद्रोह के लिए उकसा नहीं सकते? लोक-उम्मीदवार का प्रयोग सिद्धांततः भले ठीक है, लेकिन व्यवहार में इसके लिए मखौल बन गया कि हम किसी भी क्षेत्र में इतनी तैयारी नहीं कर सके कि जनता का उम्मीदवार अपनी जमानत भी बचा सके। हमारा लक्ष्य भले दलविहीन लोकतंत्र और ग्राम-स्वराज्य का है लेकिन हम राजनीति को लठैतों, अपराधियों या जाति-सम्प्रदाय के पंडों या मुल्लाओं के हाथ में नहीं छोड़ सकते। अब तो सर्वोच्च न्यायालय भी अपराधियों को उम्मीदवार होने से वंचित करने लगा है एवं चुनाव आयोग ने भी सभी उम्मीदवारों को रद्द करने का अधिकार दे दिया है। चुनाव में हम वोट की खरीद-बिक्री या छीना-झपटी के खिलाफ जनता का अहिंसक क्रांति के लिए जागरण कर सकते हैं। इसी तरह हम किसी जनहित मुद्दे को लेकर भी जनता को प्रशिक्षित कर सकते हैं। चाहें तो पार्टियां भी उनको अपना सकती हैं। दुर्भाग्य है कि अपराधियों को चुनाव लड़ने से वंचित करने के प्रस्ताव को सभी राजनीतिक दलों ने विरोध किया था क्योंकि सत्ता के साथ सम्पत्ति का भी प्रश्न जुड़ा रहता है।

साम्यवादी भाइयों ने स्वाधीनता के उषाकाल में ही विषमतापूर्ण जमीन के स्वामित्व के खिलाफ तेलंगाना क्षेत्र में एक आंदोलन किया था। विनोबाजी जब शांति दूत बनकर आये तो उन्होंने भूदान यज्ञ नाम से एक नया आंदोलन शुरू किया। शुरू में बड़ी आलोचना हुई लेकिन जमीन भू-पतियों से दान में लेकर भूमिहीनों को बांटी गयी। क्षेत्र में शांति का वातावरण लौटा एवं देशभर में इसका स्वागत भी हुआ। कुल मिलाकर लगभग 45 लाख एकड़ भूमि मिली। भू-समस्या का पूरा हल तो नहीं हुआ लेकिन जमीन के नीचे से जमीन कुछ जरूर खिसकी। विभिन्न सरकारों ने भूमि-सुधार के कई कानून पारित किये। इस आंदोलन में भूमिहीन व्यक्तियों को जमीन देने की प्रेरणा हुई। भूदान के साथ सम्पत्तिदान, श्रमदान, बुद्धिदान आदि आंदोलनों में दान दिया गया। यह एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन था। भूदान आंदोलन की असफलताओं की चर्चा हो सकती है पर यह तो मानना पड़ेगा कि जनता के हृदय में कुछ *''देने''* की प्रेरणा का आविर्भाव हुआ। यह भी सही है कि चाहे जन-आंदोलनों या सरकारी सीलिंग से जितनी जमीन मिली उससे कुछ अधिक ही भूदान आंदोलन द्वारा प्राप्त हुई।

भूदान के गर्भ से ग्रामदान का एक वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक विचार निकला। विनोबाजी ने स्वयं कहा था कि ''भूदान तो एक आंशिक विचार से परे ग्रामदान समग्र परिपूर्ण विचार है।'' अण्णाजी के आंदोलन में एक दिन में दोनों सदनों में लोकपाल विधेयक पारित होने के लिए रखा गया था। जनता एवं जनतंत्र की जड़ जमीन पर होती है। अतः यदि हम गांव-गांव में ग्राम स्वराज्य को मजबूत कर सकें और संविधान में ग्राम स्वराज्य को प्रतिष्ठित कर सकें तो सच्चा स्वराज्य सम्भव है। लगभग 104 बार संविधान

संशोधन हो चुके हैं, जिनमें मौलिक अधिकार एवं संविधान के निर्देशक तत्त्व शामिल हैं। इसलिए इस परिवर्तन के लिए हिंसा की जरूरत व्यर्थ है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण जैसे देश का नेता एवं सम्पूर्ण क्रांति जैसा अहिंसक जनान्दोलन चाहिए जो समग्र एवं परिपूर्ण विचार है। इसीलिए तो देश के सत्ताधारी एवं विरोधी पक्ष के नेताओं ने ग्रामदान के विचार को अपना लिखित समर्थन दिया था, जिसमें राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री ने भी समर्थन किया था। यह अलग प्रश्न है कि उस विचार को कार्यकारी समर्थन नहीं दिया गया।

काश! यदि इस चकाचौंध संविधान के संशोधन में इसको शामिल कर लिया जाता तो स्वतः देश में एक साथ राजनीति व आर्थिक विकेन्द्रीकरण को एक ठोस आधार मिल जाता और आज जिस केन्द्रित व्यवस्था के कारण अंतहीन एवं भीमकाय भ्रष्टाचार के पृष्ठ खुल रहे हैं या आज जिस प्रकार छोटे-छोटे राज्यों या विशेष दर्जे की जोरदार राजनीतिक मांगें की जा रही हैं, उनका भी समाधान हो जाता। स्थानीय शासन जहां मजबूत रहता है, वहां केन्द्रीय शासनतंत्र भी उतना ही सशक्त होता है। ये ग्रामदान वस्तुतः *ग्राम स्वराज्य के दुर्ग* होते और अधिक-से-अधिक स्वायत्त और स्वावलंबी होने के कारण राज्यों एवं केन्द्र की कठिनाइयों को दूर करते। व्यवहारिक रूप से यदि केवल संविधान की आठवीं सूची में केन्द्र, राज्य एवं समवर्ती सूचियों के साथ पंचायतों की एक सूची में उन्हें संविधान के 73वें संशोधन में वर्णित अन्य अधिकार ग्राम पंचायत या ग्रामदान व्यवस्था को दे दिये जाते तो आज पंचायत अधिकारों की इतनी मांग भी नहीं उठती।

आज केन्द्रीय सत्ता कुछ तो राजनीतिक अस्थिरता के कारण एवं कुछ राज्यों के स्तर पर कई तरह की राजनैतिक मांगें आने के कारण प्रशासन कमजोर हो रहा है। अतः शासन एवं अधिकार ग्राम स्तरीय निचली इकाई को उनके अधिकार दिये जाने से यह स्थिति दब सकती है।

सत्ता के बाद सम्पत्ति और उसमें भी प्राकृतिक सम्पदाओं के स्वामित्व का प्रश्न अब इसलिए गम्भीर हो रहा है कि इन पर या तो व्यक्तिगत स्वामित्व है या राज्य का स्वामित्व। व्यक्तिगत स्वामित्व तो सब दृष्टि से अमान्य माना जायेगा लेकिन राज्य के स्वामित्व से भयंकर भ्रष्टाचार एवं सामाजिक विस्थापन के सवाल उठे हैं। हाल में झारखंड, उत्कल आदि राज्यों में सरकारों एवं देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सांठ-गांठ से औने-पौने दाम में इतनी अधिक खनिज सम्पदा बेची गयी है जो सामान्य रूप से 350 साल चलती। इस प्रकार लोभ के कारण तो नदी-नाले, जंगल-पहाड़, नीम-बबूल, जमीन और आकाश सभी बेदर्दी के साथ लूटे जा रहे हैं। अतः प्राकृतिक सम्पदाओं की भी सुरक्षा के लिए हमें लोभी-लालची पूंजीवादी व्यवस्था से तो अब बचाना ही होगा, राज्य के हवाले बलि का बकरा बनाकर भी समाधान नहीं हो सकता।

अतः सर्वोदय-विचार प्राकृतिक सम्पदाओं का स्वामित्व ग्राम-समुदाय को संवैधानिक संशोधन द्वारा देने की मांग करता है। लेकिन भूदान-ग्रामदान की व्यवस्था के अनुसार इनका स्वामित्व तो सामुदायिक या ग्रामसभा का रहेगा। हां, व्यक्ति अपनी जीविका के लिए अपने से जंगल, नदी-नाले का उपयोग कर सकेंगे। राज्य के हाथों में ऊपर की शक्ति रहे—सैन्य, पुलिस, कोष आदि। यदि हम ग्राम-समुदाय को प्राकृतिक सम्पदाओं की व्यवस्था या अन्य सभी आर्थिक चीजों का स्वामित्व का दायित्व दे देंगे तो राज्य अपना मूल काम यानी प्रशासन करने में कठिनाई नहीं मानेगा। दूसरी बात यह कि सत्ता के साथ सम्पत्ति दोनों का स्वामित्व और नियमन करने में राज्य सत्ता हॉप्स के लेभियाथन की तरह अधिनायकवाद की ओर प्रवृत्त होगा। वही राज्य व्यवस्था सर्वोत्तम है—जहां कम-से-कम शासन होता है। अतः व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की दृष्टि से भी राज्य के अधीन प्राकृतिक सम्पदाओं का स्वामित्व देना खतरे से खाली नहीं है।

आज समाज टूट रहा है। इसका कारण है कि हमारा परिवार टूट रहा है। शायद हम हजारों वर्षों से *पुरुष सत्तात्मक समाज-व्यवस्था* में जीवन बिता रहे हैं। सत्ता, सम्पत्ति, शिक्षा एवं शास्त्र इन सबों पर पुरुष समाज का वर्चस्व प्रखर रहा है। चाहे बाल-विवाह हो या अनिवार्य वैधव्य, बाल्यावस्था से बच्चे एवं बच्चियों में भेदभाव, तिलक-दहेज, नारी-उत्पीड़न, यौनाचार के दोष में स्त्रियों की पशुबलि की भांति दुर्दशा एवं सर्वोपरि सामूहिक बलात्कार और उसके उपरान्त निर्मम हत्या आदि के आलोक में सर्वोदय समाज ही नहीं पूरे सभ्य समाज को गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। शायद यह धृष्टता होगी कि यदि हम पुरुष सत्तात्मक समाज के बदले स्त्री सत्तात्मक समाज को सशक्त करें तो शांति की नयी सभ्यता का आविर्भाव हो। स्त्री-पुरुष प्रकृति की दो समान धाराएं हैं—यही वेद ने कहा है। हमें अपनी पत्नी को दासी नहीं समझकर सखा और मित्र मानना न्यायपूर्ण एवं नैतिक भी है। परस्पर सहयोग ही आदर्श परिवार का रहस्य है।

पाश्चात्य देशों में नारी स्वातंत्र्य की विकृतियां एवं प्रयोग हमारे सामने हैं। उसी प्रकार धर्म के नाम पर बहु-विवाह, अधिकाधिक नारी प्रताड़ना, अशिक्षा, लोकसभा जैसे शीर्ष स्थल पर नर-नारी की असमानता आदि के खिलाफ स्वस्थ जनमत निर्माण करना हमारा कर्तव्य है। स्त्री-शक्ति की साधना गांधी और विनोबा की अमूल्य विरासत तो है ही, हमलोगों के लिए वह स्पष्ट व्यवहारिक मार्गदर्शक भी है। संकेत के तौर पर हम इतना ही दुहराना चाहेंगे—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते,
रमन्ते तत्र देवताः। ❑

(45वां अखिल भारतीय सर्वोदय समाज सम्मेलन, आगरा (उ.प्र.) में 23 अक्टूबर, 2013 को दिया अध्यक्षीय उद्‌बोधन भाषण।)

मरुभूमि का भाग्यवान समाज

❑ अनुपम मिश्र

समाज कैसे चलता है, वह अपने सारे सदस्यों को कैसे संगठित करता है, कैसे उनका शिक्षण-प्रशिक्षण करता है, उन सबका प्रयोग वह कैसी कुशलता से करता है, उस समाज के एक सदस्य के रूप में मैं भी पिछले तीस साल से देख-समझ रहा हूं। वह कितनी लम्बी योजना बनाकर काम करता है उसे भी देखने-समझने का मौका मिला है। समाज का भूतकाल, वर्तमान और भविष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी जुड़ता रहे, सधता रहे, संभला रहे और छीजने के बदले संवरता रहे, इस सबका विराट दर्शन मुझे विशाल पसरे रेगिस्तान में, मरु प्रदेश में मिला और आज भी मिलता चला जा रहा है।

इस विशाल मरुभूमि में फैले रेत के विशाल साम्राज्य की चुटकी भर रेत ही शायद आपके सामने रख पाऊं। पर मुझे उम्मीद है कि इस जरा-सी रेत के एक-एक कण में अपने समाज की शिक्षा, उसका प्रशिक्षण, उसका शिक्षण, उसकी परम्परा, उसके अलिखित पाठ्यक्रम इसे लागू करने वाले विशाल संगठन की कभी भी असफल न होने वाले उसके परिणामों की झलक, चमक और उष्मा आपको मिल जायेगी।

आज जहां रेत का विस्तार है वहां कुछ लाख साल पहले समुद्र था। खारे पानी की विशाल जलराशि, लहरों पर लहरें, धरती का, भूमि का एक बिता टुकड़ा भी यहां नहीं था, उस समय। यह विशाल समुद्र कैसे लाखों बरस पहले सूखना शुरू हुआ फिर कैसे हजारों बरस तक सूखता ही चला गया और फिर यह कैसे सुन्दर सुनहरा मरुप्रदेश बन गया, धरती धोरांरी बन गया—इसे पढ़ने-समझने में आपको भूगोल की किताबों, प्रागैतिहासिक पुस्तकों के ढेर में हजारों पन्ने पलटने पड़ सकते हैं। पर इस जटिल भौगोलिक घटना की बड़ी सरल समझ आपको यहां के समाज के मन में मिल जायेगी। वह समाज इस सारे प्रपंच, प्रसंग को बस केवल दो शब्दों में याद रखता है—पलक दरियाव, यानी पलक झपकते ही जो दरिया, समुद्र गायब हो जाये। लाखों बरस का गुणा-भाग, भजनफल, अनगिनत शून्य वाली संख्याएं सब कुछ अपने ब्लैकबोर्ड से उसने एक सधे शिक्षक की तरह डस्टर से मिटाकर चाक का चूरा झाड़ डाला और बस कहा—पलक दरियाव। जो समाज इतना पीछे इतनी समझदारी से झांक सकता है, वह उतना ही आगे अपने भविष्य में भी देख सकता है। वह उतनी ही सरलता और सहजता से फिर कह देता है—पलक दरियाव। यानी पलक झपकते ही यहां फिर कभी समद्र आ सकता है।

धरती गरम होने से समुद्र का स्तर ऊपर उठने की जो चिन्ता आज हम विश्व के विशाल मंचों पर देख रहे हैं, उसकी एक छोटी-सी झलक आपको इस समाज के नुक्कड़ नाटकों में, नौटंकी में कभी भी, कहीं भी आज से सौ दो सौ बरस पहले भी मिल सकती थी। यहां की भाषा में नये शिक्षाशास्त्री शायद इसे भाषा नहीं बल्कि बोली कहेंगे तो उस बोली में समुद्र, दरियाव के लिए एक शब्द है—हाकड़ो। हाकड़ो का अर्थ आत्मा भी होता है। आज थोड़ी-सी नयी किस्म की पढ़ाई पढ़ गया समाज इस इलाके को पानी के अभाव का इलाका मानता है। पर इस इलाके की आत्मा यानी हाकड़ो है—पानी।

समय की अनादि अनंत धारा को क्षण-क्षण में देखने और सृष्टि के विराट विस्तार को अणु में परखने वाली इस पलक ने, इस दृष्टि ने हाकड़ो को, समुद्र को जरूर खो दिया लेकिन उसने अपनी आत्मा में हाकड़ो की विशाल जलराशि को कण-कण में, बूंदों में देख लिया। उसने अखण्ड समुद्र को खंड-खंड कर अपने गांव-ठांव में फैला लिया। प्राथमिक शाला की पुस्तकों से लेकर देश की योजना आयोग तक के कागजों में राजस्थान की विशेषकर इसके मरुप्रदेश की छवि एक सूखे, उजड़े और पिछड़े इलाके की है। थार रेगिस्तान का वर्णन तो कुछ ऐसा मिलेगा कि आपका कलेजा ही सूख जाये। देश के सभी राज्यों में क्षेत्रफल के आधार पर अब यह सबसे बड़ा प्रदेश है लेकिन वर्षा के वार्षिक औसत में यह देश के प्रदेशों में अंतिम है। वर्षा के पुराने इंचों में नापें या नटे मिलीमीटरों में, वर्षा यहां सबसे कम गिरती है। देश की औसत वर्षा 110 सेंटीमीटर आंकी जाती है। उस हिसाब से राजस्थान का औसत लगभग आधा ही बैठता है—60 सेंटीमीटर। लेकिन औसत बताने वाले ये आंकड़े यहां का कोई ठीक चित्र नहीं दे सकते। राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक यह 10 सेंटीमीटर से 15 सेंटीमीटर और कहीं-कहीं तो उससे भी कम है।

भूगोल की किताबें प्रकृति को, वर्षा को इस मरुस्थल में एक अत्यन्त कंजूस महाजन, साहूकार की तरह देखती हैं और इस इलाके को उसके शोषण का दयनीय शिकार बताती हैं। राज्य के पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग तक आते-आते वर्षा कम हो जाती है। ठेठ पश्चिम यानी बाड़मेर, जैसलमेर तक जाते-जाते तो वह सूरज की तरह डूबने लगती है। जैसलमेर में वर्षा का सालाना आंकड़ा 15 सेंटीमीटर है। पर खुद जैसलमेर की गिनती देश के सबसे बड़े जिले के रूप में की जाती है। इसमें भी पूर्व और पश्चिम है। जैसलमेर का पश्चिमी भाग पाकिस्तान से सटा हिस्सा तो कुछ ऐसा है कि मानसून के बादल यहां तक आते-

आते थक ही जाते हैं और कभी बस 7 सेंटीमीटर तो कभी 3-4 सेंटीमीटर पानी की हल्की-सी बौछार कर विशाल नीचे आकाश में एक मुट्ठी रूई के टुकड़े की तरह गायब हो जाते हैं। इसकी तुलना गोवा के कोंकण से या फिर पाठ्यपुस्तकों से ही उभरे एक और स्थान चेरापूंजी से करें तो यहां आंकड़ा 1000 सेंटीमीटर भी पार कर जाता है।

मरुभूमि में बादल नहीं सूरज बरसता है। औसत तापमान 50 डिग्री पर रहता है। एक और तीसरी बात भी जोड़ लीजिए कि यहां के ज्यादातर हिस्सों में पाताल पानी खारा है। वह पीने लायक नहीं है। जीवन को बहुत ही कठिन बनाने वाले इन तीन बिन्दुओं से घिरा यह रेगिस्तान दुनिया के अन्य रेगिस्तानी इलाकों की तुलना में बहुत ही अलग है। यहां उनके मुकाबले बसावट भी ज्यादा है और उस बसावट में सुगंध भी है। इस सुगंध का क्या रहस्य है? रहस्य है यहां के समाज में। मरुप्रदेश के समाज ने प्रकृति से मिलने वाले इतने कम पानी का, वर्षा का रोना कभी नहीं रोया। उसने इस सबको एक चुनौती की तरह लिया और अपने को ऊपर से नीचे तक इतना संगठित किया, कुछ इस ढंग से खड़ा किया कि पानी का स्वभाव पूरे समाज के स्वभाव में बहुत ही सरल और तरल ढंग से बहने लगा। ''साईं इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय'' की जगह उस समाज ने कहा होगा—''साईं जितना दीजिए वामे कुटुम्ब समाय''। इतने कम पानी में उसने इतना ठीक प्रंधन कर दिया कि वह खुद भी प्यासा नहीं रहा और साधु तो क्या असाधु को भी पानी मिल गया।

पानी का काम यहां भाग्य का काम भी है और कर्तव्य भी। वह सचमुच भाग्य ही तो था कि महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र से अर्जुन को साथ लेकर द्वारका इसी मरुप्रदेश से होकर लौट रहे थे। उनका शानदार रथ जैसलमेर से गुजरा। जैसलमेर के पास त्रिकूट पर्वत पर उन्हें उतुंग ऋषि तपस्या करते हुए मिल गये। श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया। फिर उनके तप से प्रसन्न होकर उन्होंने ऋषि से वर मांगने को कहा। उतुंग का अर्थ है ऊंचा। ये ऋषि सचमुच ऊंचे निकले। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं मांगा। प्रभु से प्रार्थना की कि यदि मेरे कुछ पुण्य हैं तो भगवान वर दें कि इस मरुभूमि पर कभी अकाल न रहे। भगवान ने तथास्तु कहकर वरदान दे दिया। कोई और समाज होता तो इस वरदान के बाद हाथ पर हाथ रख बैठ जाता। सोचता, कहता कि लो भगवान कृष्ण ने वरदान दे दिया है कि यहां पानी का अकाल नहीं पड़ेगा तो अब हमें क्या चिन्ता, हम काहे को कुछ करें। अब तो वही सबकुछ करेगा।

लेकिन मरुभूमि का भाग्यवान समाज मरुनायक (श्रीकृष्ण को मरुनायक भी कहते हैं) से ऐसा वरदान पाकर हाथ-पर-हाथ रखकर नहीं बैठा। उसने अपने को पानी के मामले में तरह-तरह से कसा। गांव-गांव, ठांव-ठांव वर्षा को रोक लेने की, सहेज लेने की एक से एक सुन्दर रीतियां खोजीं। रीति के लिए यहां एक पुराना शब्द है वोज। वोज यानी रचना, मुक्ति और उपाय भी। इस वोज के अर्थ में विस्तार भी होता जाता है। हम पाते हैं कि पुराने प्रयोगों में वोज उपयोग, सामर्थ्य, विवेक और फिर विनम्रता के अर्थ में भी होता था। वर्षा की बूंदों को सहेज लेने का वोज यानी विवेक भी रहा और उसके साथ ही पूरी विनम्रता भी। इसलिए यहां के समाज ने वर्षा को इंचों और सेंटीमीटरों में नहीं नापा। उसने इसे बूंदों में नापा। पानी कम गिरता है? जी नहीं, पानी की तो करोड़ों बूंदें गिरती हैं। फिर ये बूंदें भी मामूली नहीं। उसने इसे रजत बूंदें कहा। उसी ढंग से इसे देखा और समझा भी। अपनी इस अद्‌भुत समझ से, वोज से उसने इन रजत बूंदों को सहेजने की एक ऐसी भव्य परम्परा बना ली जिसकी धवल धारा इतिहास से निकल कर वर्तमान में बह ही रही है, वह भविष्य में भी अनवरत बहती रहेगी। ❑

सर्वोदय दैनन्दिनी : 2014

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी द्वारा वर्ष 2014 की *'सर्वोदय दैनन्दिनी'* (हिन्दी/अंग्रेजी) का प्रकाशन *गांधी जयंती 2 अक्टूबर 2013* के अवसर पर किया जा चुका है और डायरी की बिक्री प्रारम्भ हो गयी है।

सर्वोदय दैनन्दिनी : 2014 के प्रत्येक पृष्ठ पर गांधीजी की ज्ञानवर्धक सूक्तियां (हिन्दी एवं अंग्रेजी में) दी गयी हैं। आवरण पृष्ठ अधिक आकर्षक, रोचक साज-सज्जा तथा मैपलिथो कागज पर सुन्दर छपाई के साथ इस वर्ष की दैनन्दिनी मात्र **रुपये 110/-** में उपलब्ध है।

पिछले वर्ष देर से क्रयादेश भिजवाने वाले साथियों को हम दैनन्दिनी की आपूर्ति नहीं कर पाये थे। आप अपना क्रयादेश *सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-1 (उ.प्र.), फोन-0542-2440-385/223 ई-मेल : sarvodayavns@yahoo.co.in* के पते पर शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें ताकि हम आपको समय से डायरी की आपूर्ति कर पायें।

सर्वोदय दैनन्दिनी : 2014 की खरीद पर देय कमीशन (छूट) इस प्रकार है :

01 से 10 की संख्या पर	10%
11 से 50 की संख्या पर	20%
51 से 200 की संख्या पर	25%
201 से 500 की संख्या पर	30%
500 से अधिक की संख्या पर	35%

आाशा है, गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी आपका सहयोग प्राप्त होगा। **–प्रकाशक**

पर्यावरण एवं विकास

❑ डॉ. अरुणा पाठक

भौतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का संपूर्ण योग जो मानव के चारों ओर व्याप्त होता है और उसे प्रभावित करता है 'पर्यावरण' कहलाता है। पर्यावरण शब्द 'परि' 'आवरण' दो शब्दों से मिलकर बना है। आदिकाल से ही मानव एवं प्रकृति का अटूट संबंध रहा है। सभ्यता के विकास में प्रकृति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। विकास के आरम्भिक चरण में कोई भी जीवधारी या मनुष्य सर्वप्रथम प्रकृति के साथ अनुकूल होने का प्रयास करता है, इसके पश्चात् वह धीरे-धीरे प्रकृति में परिवर्तन करने का प्रयास करता है। परंतु अपने विकास क्रम में मानव की बढ़ती भौतिकवादी महत्त्वाकांक्षाओं ने पर्यावरण में इतना अधिक परिवर्तन ला दिया है कि मानव और प्रकृति के बीच का संतुलन, जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है, धाराशायी होने के कगार पर पहुंच गया है। साथ ही मानव की अदूरदर्शी विकास प्रक्रियाओं ने विनाशात्मक रूप धारण कर लिया है। 1970 के दशक में ही यह अनुभव किया गया कि वर्तमान विकास की प्रवृत्ति असंतुलित है एवं पर्यावरण की प्रतिक्रिया उसे विनाशकारी विकास में परिवर्तित कर सकती है।

संयुक्त राष्ट्र ने मई, 1969 की रिपोर्ट में पर्यावरण असंतुलन पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की कि मानव जाति के इतिहास में पहली बार पर्यावरण असंतुलन का विश्वव्यापी संकट खड़ा हो रहा है। मानव जनसंख्या में असीमित वृद्धि, पर्यावरणीय आवश्यकताओं का सक्षम एवं वनस्पति जीवन का बढ़ता हुआ विकास का खतरा—ये सब उसके लक्षण हैं। यही वर्तमान प्रवृत्ति जारी रहती है तो पृथ्वी पर जीवन खतरे में पड़ सकता है।

औद्योगिक विकास और पर्यावरण : औपनिवेशिक काल से ही साम्राज्यवादी देशों ने प्राकृतिक साधनों का अंधाधुंध दोहन किया। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियां, संयंत्र आदि स्थापित हुए। यूरोप, अमेरिका आदि देशों में जीवाश्म इंधन की खपत बढ़ती चली गयी। प्राकृतिक संसाधनों के धनी देश जैसे—भारत, अफ्रीका आदि बड़े और अमीर देशों की जरूरत को पूरा करने के लिए शोषित होने लगे। एक ओर जहां औद्योगीकरण की बयार, धन, ऐशो-आराम, रोमांच और जीत का एहसास लायी, वहीं पृथ्वी की हवा में जहर घुलना शुरू हो गया। इसकी परिणति पर्यावरणीय असंतुलन के रूप में सामने आयी। ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियर पिघलने एवं वनों की अत्यधिक कटाई से नदियों में बाढ़ आ रही है। समुद्र का जलस्तर सन् 1990 के मुकाबले सन् 2011 में 10 से 20 सेंटीमीटर तक बढ़ गया है। जिससे तटीय इलाकों में मैंग्रोव के जंगल नष्ट हो रहे हैं। परिणामस्वरूप समुद्री तूफानों की संख्या बढ़ती जा रही है। प्रतिवर्ष समुद्र में करोड़ों टन कूड़े-कचरे एवं खर-पतवार के पहुंचने से विश्व की लगभग एक चौथाई मुंगे की चट्टाने (कोरल रीफ) नष्ट हो चुकी है। जिसमें समुद्री खाद्य-प्रणाली प्रभावित होने से परिस्थिति तंत्र संकट में पड़ गया है।

अनियंत्रित औद्योगिक विकास के फलस्वरूप निकले विषाक्त कचरे को नदियों में बहाते रहने से विश्व में स्वच्छ जल का संकट उत्पन्न हो गया है। विश्व के लगभग 1 अरब से अधिक लोगों को पीने का पानी नहीं मिल रहा है। रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से कृषि योग्य भूमि बंजर हो रही है। औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक कोयले, पेट्रोलियम पदार्थों, पनबिजली व आण्विक शक्ति के दुरुपयोग से पर्यावरण संकट में पड़ गया है। अतीत के युद्ध एवं हिरोशिमा व नागासाकी पर विध्वंसक बम गिराने की क्रूर कार्यवाहियों से पर्यावरण एवं मनुष्य की बेहद क्षति हुई है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) ने हाल ही में अपनी एक शोध रिपोर्ट में बताया कि दक्षिण एशिया में आसमान प्रदूषण के कारण 'ब्राउनहेज' से आच्छादित हो गया है। पर्यावरणविदों का मानना है कि इसके लिए औद्योगिकीकरण के साथ-साथ अफगानिस्तान पर अमेरिकी बम-बारी से उत्पन्न विषैली गैसें उत्तरदायी हैं।

विश्व में प्लास्टिक एवं पॉलिथीन की पहले से ही स्वीकृति बढ़ने से पर्यावरण संकट में था। अब साइबर क्रांति के कारण 'ई-वेस्ट' यानी इलेक्ट्रॉनिक कचरा एवं सांस्कृतिक प्रदूषण नई समस्याओं के रूप में सामने है। 'ई-वेस्ट' से फास्फोरस, कैडमियम व मरकरी जैसी खतरनाक धातुओं को असावधानीपूर्वक निकालने से न्यूरोसिस (मनोरोग) एवं कैंसर के रोगियों की संख्या में तीव्रतर वृद्धि हो रही है। ओजोन-क्षरण, अम्लवर्षा, त्वचा कैंसर, शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता एवं आंखों की कोर्नियां एवं लेंस के नुकसान का कारण बनता है।

पर्यावरण सुरक्षा हेतु भारत के प्रयास : भारतीय संविधान विश्व का पहला संविधान है, जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान है। पर्यावरण से संबंधित समस्याओं और मामलों पर भारत सरकार ने चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान विशेष ध्यान देते हुए 1972 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के तहत राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन एवं समन्वय समिति का गठन किया। जन साधारण के प्रति जागरूकता लाने के लिए 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा नीति निर्देशक तत्त्व के अंतर्गत अनुच्छेद 48ए (छ) में निम्नलिखित प्रावधान किये गये।

अनुच्छेद 48ए (छ) राज्य, देश के पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षा तथा उसमें सुधार करने का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 51ए (छ) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्द्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दया मान रखें।

भारतीय दण्ड विधान की धारायें 268, 269 272, 277, 278, 284, 290, 298 तथा 426 में प्रदूषण के लिए दंडात्मक प्रावधान है। भारतीय दंड प्रक्रिया की संहिता की धारा 135 में प्रदूषण को रोकने के प्रावधान हैं। वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 में जीवों के संरक्षण के प्रावधान हैं।

पर्यावरण संरक्षण और इसके लिए कानूनी उपायों को सुनिश्चित करने के लिए प्रशासन तंत्र की समीक्षा और उन्हें मजबूत बनाने के उद्देश्य से जनवरी 1980 में एक पर्यावरणीय परामर्श समिति का गठन किया गया। इसी समिति की सिफारिशों पर नवंबर, 1980 में एक पृथक केन्द्रीय पर्यावरण विभाग की स्थापना की गयी, जिसे 1985 में पूर्णरूप से पर्यावरण तथा वन मंत्रालय का दर्जा प्रदान किया गया। पर्यावरण संरक्षण को कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत लाने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों ने 30 से अधिक कानूनों को लागू किया है। इनमें से प्रमुख कानून हैं— वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम 1972, जल पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम 1986, मोटर वाहन (संशोधित) अधिनियम 1988, इन अधिनियमों को केन्द्रीय और राज्य प्रदूषण निरीक्षक जैसे संगठनों के माध्यम से लागू किया जाता है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय संरक्षण रणनीति और पर्यावरण तथा विकास से संबंधित नीतिगत ब्यौरा जून, 1992 में स्वीकृत किया। इसमें देश के विभिन्न क्षेत्रों की विकास गतिविधियों में पर्यावरण के महत्त्व को शामिल करने के लिए रणनीति और कार्यवाहियों का प्रावधान है। ❑

प्यास बुझाने की आस

❑ पंकज चतुर्वेदी

बीते कई दशकों की तरह इस बार भी गर्मी शुरू होते ही बुंदेलखंड में जल संकट, पलायन और बेबसी की खबरें बढ़ने लगी हैं। कोई अलग राज्य को ही इसका एकमात्र हल मान रहा है तो कोई सरकारी उपेक्षा का उलाहना दे रहा है। बुंदेलखंड पैकेज के कई सौ करोड़ से कैसे कतिपय लोगों ने अपना घर भरा, यह किसी से छुपा नहीं है। असल में नेतागण चाहते ही नहीं हैं कि इस इलाके का विकास हो या यहां जल संकट का निराकरण हो, क्योंकि यदि समस्या नहीं रही तो विशेष पैकेज या ज्यादा बजट की मांग कैसे हो सकेगी? इस मौसम में संतोषप्रद बारिश के बावजूद इलाके से लोगों का पलायन जारी है। कई जिलों की तो आधी आबादी घर-गांव छोड़ चुकी है। बुंदेलखंड की समस्या के समाधान के लिए जरूरी है कि स्थानीय स्तर पर संसाधनों का समुचित प्रबंधन किया जाये।

संयुक्त बुंदेलखंड कोई 1.60 लाख वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैला है, जिसकी आबादी तीन करोड़ से अधिक है। यहां हीरा, ग्रेनाइट की बेहतरीन खदानें हैं, जंगल तेंदू पत्ता और आंवला आदि से पटे हैं, लेकिन इसका लाभ स्थानीय लोगों को नहीं मिलता है। दिल्ली, लखनऊ और उससे भी आगे पंजाब तक जितने भी बड़े निर्माण कार्य चल रहे हैं, उसमें अधिकांश में गारा-गुम्मा (मिट्टी और ईंट) का काम बुंदेलखंडी मजदूर ही करते हैं। शोषण, पलायन और भुखमरी को वे अपनी नियति समझते हैं। जबकि खदानों व अन्य करों के माध्यम से बुंदेलखंड सरकारों को अपेक्षा से अधिक उगाह कर देता है। इलाके के विकास के लिए इस कर का 20 फीसदी भी यहां खर्च नहीं होता है।

बुंदेलखंड के सभी कस्बे, शहर की बसाहट का एक ही पैटर्न रहा है। चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़, पहाड़ की तलहटी में दर्जनों छोटे-बड़े ताल-तलैया और उनके किनारों पर सस्ती पक्के घाटों वाले हरियाली से घिरे व विशाल तालाब बुंदेलखंड के हर गांव-कस्बे की सांस्कृतिक पहचान हुआ करते थे। ये तालाब भी इस तरह थे कि एक के पूरा भरने पर उससे निकला पानी अगले तालाब में अपने आप चला जाता था, यानी बारिश की एक-एक बूंद संरक्षित हो जाती थी।

चाहे चरखारी को लें या छतरपुर को, सौ साल पहले वे वेनिस की तरह तालाबों के बीच बसे दिखते थे। अब उपेक्षा के शिकार शहरी तालाबों को कंक्रीट के जंगल निगल गये। बचे-खुचे तालाब शहरों की गंदगी को ढोने वाले नाबदान बन गये। गांवों की अर्थव्यवस्था का आधार कहलाने वाले चंदेलकालीन तालाब सामंती मानसिकता के शिकार हो गये। सनद रहे बुंदेलखंड देश की सर्वाधिक विपन्न इलाकों में से है। यहां न तो कल-कारखाने हैं और न ही उद्योग-व्यापार, महज खेती पर यहां का जीवनयापन टिका हुआ है।

राजनेता प्रकृति की इस नियति को नजरअंदाज करते हैं कि यह इलाका सदियों से प्रत्येक पांच साल में दो बार सूखे का शिकार होता रहा है। इस क्षेत्र के उद्धार के लिए सिर्फ तदर्थ पैकेज की नहीं बल्कि संसाधनों के बेहतर प्रबंधन की दरकार है। लेकिन इसका यहां सर्वथा अभाव है। पानी की बर्बादी रोकना, लोगों को पलायन के लिए मजबूर होने से बचाना और कम पानी वाली फसलों को बढ़ावा देना, महज ये तीन उपचार बुंदेलखंड की तकदीर बदल सकते हैं। ❑

जीरो बजट खेती : एक प्रयोग

❑ बाबा मायाराम

आज किसान, खेती और गांव अभूतपूर्व संकट के दौर से गुजर रहे हैं। हरित क्रांति के साथ आये संकर बीजों की चमक अब फीकी पड़ने लगी है। अब किसान अपने आपको ठगा-सा महसूस कर रहे हैं। ज्यादा लागत और कम उपज ने उनकी कमर तोड़ दी है। नौबत यहां तक आ पहुंची है कि वे अपनी जान देने पर मजबूर हैं। लेकिन कृषि वैज्ञानिक सुभाष पालेकर ने आधुनिक रासायनिक कृषि-पद्धति का विकल्प पेश कर रहे हैं, जिससे न केवल किसान अपनी खेती सुधार सकते हैं बल्कि इससे उनकी खेती व गांव आत्मनिर्भर बन सकेंगे। सुभाष पालेकर खुद किसान परिवार से हैं। बचपन से खेती से गहरा लगाव रहा। कृषि की पढ़ाई करने के बाद फिर वे गांव की ओर लौट आये। खेती करने लगे, जो उनको हमेशा ही भाती थी। आज वे मशहूर कृषि वैज्ञानिक हैं, जिनकी अनूठी कृषि-पद्धति की चर्चा देश-दुनिया में हो रही है। पिछले कुछ सालों से पालेकर जी ने एक अनूठा अभियान चलाया हुआ है—जीरो बजट आध्यात्मिक खेती का। इस अभियान से प्रेरित होकर करीब 40 लाख किसान इस पद्धति से खेती कर रहे हैं। हाल ही में (4 से 8 सितंबर) उनका शिविर मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर में हुआ, जहां मैंने उनसे लंबी बातचीत की।

शिविर में करीब दो सौ किसान थे। पालेकरजी जीरो बजट खेती के बारे में धारा प्रवाह बताते हैं। कभी ब्लैकबोर्ड पर लिखकर समझाते हैं। किसान मनोयोग से सुनकर अपनी कापी में नोट करते जाते हैं। अपने सवाल पूछते हैं। सच में हमारे देश के स्कूल ऐसे ही होने चाहिए, जहां छात्र सवाल पूछ सकें। मैं इसे देखकर अभिभूत हूं। यह पालेकर जी की अनूठी पाठशाला थी। वे इसमें बताते हैं कि कैसे बंजर होती जमीन फिर से उर्वर बन सकती है। क्यों मिश्रित फसलें लगानी चाहिए। पौधों के पत्ते किस तरह सूरज की रोशनी से अपना भोजन तैयार करते हैं। क्यों सोयाबीन की खेती को फैलाया गया। हरित क्रांति से किसको फायदा हुआ, इत्यादि। किसान मंत्रमुग्ध होकर सुनते जाते हैं, उन्हें पालेकरजी से बहुत उम्मीद है। वे बताते हैं कि इस अभियान को शुरू करने से पहले खुद रासायनिक खेती करते थे। उन्होंने 1972 से 1985 तक इस कृषि-पद्धति से खेती की। लेकिन पूरी तरह वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने के बाद भी उसमें उपज बढ़ने के बजाय घटती जा रही थी। चूंकि वे कृषि वैज्ञानिक थे, उनके घर उनके कृषि वैज्ञानिक मित्र आते थे, वे उनसे इस बारे में बातें करते रहते थे।

एक दिन वे अपने कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति से मिलने गये, जो उन्हें बेहद स्नेह करते थे और यह सवाल उनके सामने रखा कि आखिर रासायनिक खेती में मैं कोई गलती नहीं करता, विधि अनुसार खेती करता हूं, फिर क्यों उपज नहीं बढ़ती? उन्होंने जवाब दिया—रासायनिक खाद की मात्रा बढ़ाओ, उपज भी बढ़ेगी। पालेकर समझ गये कुलपति के पास उनके सवाल का जवाब नहीं है। पालेकरजी ने पूर्व में आदिवासियों के बीच एक शोध किया था। वे उनके बीच तीन सालों तक जाते रहे। जंगल की विविधता को देखा और उसका अध्ययन किया। वे यह सोचते रहे कि आखिर में कोई रासायनिक खाद नहीं डालता और न ही सिंचाई करता, फिर जंगल हरा-भरा क्यों है?

वर्ष 1988 से 1994 के बीच अपने खेत में खेती के प्रयोग किये। वे अमरावती (महाराष्ट्र) से हैं। इस प्रयोग में काफी खर्च आया। यहां तक कि पत्नी के गहने-जेवर भी बेचने पड़े। इस बीच वे अपने प्रयोगों के बारे में समाचार पत्रों व पत्र-पत्रिकाओं में लिखने लगे। धीरे-धीरे उनके प्रयोगों की चर्चा होने लगी और उन्हें काफी सराहना मिली। इस बीच वे पुणे में बलिराजा नाम की पत्रिका से जुड़ गये, जहां से उनकी कृषि-पद्धति का प्रचार-प्रसार हुआ। यहां वे वर्ष 1996 से 1998 तक रहे। लेकिन किसानों के बीच जाकर उन्हें इस अभियान से जोड़ने की छटपटाहट के कारण वे जल्द ही वहां से पुनः गांव में आ गये।

इसके बाद किसानों के बीच जा-जाकर उन्हें जीरो बजट आध्यात्मिक कृषि के बारे में बताने लगे। उनके लिए शिविर करने लगे। उनके अनुसार अब तक 40 किसानों ने इस पद्धति को अपना लिया है। उन्होंने इस काम को आगे बढ़ाने के लिए यह तय किया कि वे किसानों के लिए आयोजित किसी भी शिविर में कोई मानदेय नहीं लेंगे और दूसरा खुद से किसी के पास जाकर इसका प्रचार नहीं करेंगे। अगर हां किसान चाहेंगे तो वहां जाकर शिविर करेंगे। इस तरह से यह सिलसिला शुरू हुआ, जो अब निरंतर जारी है।

पालेकर कहते हैं कि हम धरती माता से लेने के बाद उसके स्वास्थ्य के बारे में भी सोचें। यानी बंजर होती जमीन को कैसे उर्वर बनायें, इस पर सोचना जरूरी है। उपज के लिए मित्र जीवाणुओं की संख्या बढ़ानी चाहिए। खेतों में नमी बनी रहे, इसके लिए ही सिंचाई करें। हरी खाद लगायें। देसी बीजों से ही खेती करें। इसके लिए बीजोपचार विधि अपनाएं। फसलों में विविधता जरूरी है। मिश्रित खेती करें। द्विदली फसलों के साथ एकदली→

गुजरात : समृद्धि से उपजा विनाश

❑ डॉ. ओ. पी. जोशी

गुजरात का विकास मॉडल आजकल चर्चा का विषय है। लेकिन विकास के इस मॉडल से वहां का पर्यावरण भारी रूप से प्रदूषित हो गया है। गौरतलब है कि आर्थिक सम्पन्नता की दौड़ में पिछले कई वर्षों से गुजरात में कई प्रकार के रसायनों का जहर फैल चुका है। वर्ष 1989 में तत्कालीन केंद्रीय पेट्रोलियम व रसायन मंत्री ने स्वीकार किया था कि गुजरात में प्रदूषण की समस्या काफी गंभीर है। उस समय अंकलेश्वर में लगभग 200 कारखानों में 50 हजार प्रकार के प्रतिबंधित रसायनों का उपयोग होता पाया गया था।

राजकोट के जेतपुरा में साड़ियां रँगने के कारखानों के कारण कई कुओं का पानी इतना रंगीन हो गया था कि लोग मजाक में इसे कोकाकोला कहते थे। 1992-93 में भी केंद्र सरकार ने देश में जिन 19 प्रदूषित स्थानों की पहचान की थी उनमें गुजरात का वापी काफी ऊंचे स्थान पर था। सरकारी जानकारी के अनुसार राज्य में लगभग 9000 उद्योग हैं, जो जल एवं वायु प्रदूषण फैलाते हैं। इनमें लगभग 2500 रासायनिक उद्योग हैं। मई 1995 में हाईकोर्ट में अहमदाबाद, वापी, अंकलेश्वर में फैले 1500 उद्योगों से पैदा हुए प्रदूषण पर सुनवाई करते हुए, कुछ को समय सीमा में प्रदूषण नियंत्रण एवं कुछ को बंद करने के आदेश दिए थे।

रँगाई उद्योगों में उपयोगी नेप्थाल—डाय—सल्फोनिक एसिड व मेथाबिलिक एसिड के निर्माण के खतरनाक कारखानें भी यहां कार्यरत पाए गए थे। भारी प्रदूषण के कारण इन एसिड्स का निर्माण विदेशों में प्रतिबंधित हैं। उत्तरी गुजरात के छत्रक से वापी तक फैला क्षेत्र प्रदूषण की दृष्टि से काफी खतरनाक माना गया है। इसी क्षेत्र में आने वाले अन्य शहर अहमदाबाद, आणंद, बड़ौदा, अंकलेश्वर, हजीरा, सूरटा एवं बलसाड़ है जहां बड़े-बड़े औद्योगिक कारखानों के कारण काफी प्रदूषण फैल रहा है। अहमदाबाद के नरोड़ा में स्थित मोनोक्लोरो एसिटिक अम्ल का कारखाना भी खतरनाक की श्रेणी में है।

सर्वाधिक गंभीर स्थिति मध्य व दक्षिण गुजरात की है जहां नंदेसरी औद्योगिक क्षेत्र में सर्वाधिक (लगभग 300) रासायनिक उद्योग कार्यरत हैं। पूरे राज्य में लगभग 30 ऐसे कारखानें हैं जो खतरनाक रसायनों का निर्माण करते हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल में वर्ष 2007 से 2009 तक अध्ययन कर जारी अपनी रिपोर्ट में बताया था कि देश के 88 औद्योगिक क्षेत्रों में गुजरात के अंकलेश्वर व वापी, प्रथम व दूसरे स्थान पर थे। इन औद्योगिक क्षेत्रों में प्रदूषण नियंत्रण के ठोस प्रयास न होने के कारण यहां का पानी, हवा एवं भूमि का प्रदूषण इनसानी बसाहट के लिए उपयुक्त नहीं बताया गया था।

इसी प्रकार केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल द्वारा हाल ही में (वर्ष 2013) जारी एक रिपोर्ट अनुसार देश के 29 प्रतिशत औद्योगिक कचरे के साथ गुजरात सबसे ज्यादा प्रदूषित राज्य है। इसके बाद महाराष्ट्र व आंध्रप्रदेश हैं। गुजरात में सर्वाधिक प्रदूषण का कारण गोल्डन कोरिडोर बताया गया है, जहां स्थित कारखानों से प्रति वर्ष लगभग 60 लाख टन कचरा पैदा होता है। यूरोप व अमेरिका से बाहर किए गए कई रासायनिक कारखानें यहां कार्यरत हैं। प्रदूषित पानी की सिंचाई से पैदा की गई सब्जियों में भी भारी धातुओं की उपस्थिति पाई गई है। कुछ गैर सरकारी संगठनों ने अध्ययन कर बताया है कि गुजरात के कुछ क्षेत्रों में हवा में कैंसरजन्य पदार्थ भी उपस्थित हैं। रासायनिक कारखानों की अधिकता के कारण पर्यावरणविद् गुजरात को रासायनिक बम पर टिका हुआ मानते हैं। खतरनाक कारखानों के क्षेत्र में यदि तेज भूकंप आता है या कोई दुर्घटना होती है तो यहां भी जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी के समान त्रासदी संभावित है। *(सप्रेस)*

→फसलें लगायें। खेत में आच्छादन करें, यानी खेत को ढंककर रखें। खेत को कृषि अवशेष डंठल व खरपतवार से ढंक देना चाहिए। खेत को ढंकने से सूक्ष्म जीवाणु, केंचुआ, कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं और जमीन को छिद्रित, पोला और पानीदार बनाते हैं। इससे नमी भी बनी रहती है। खेत का ढंकाव एक ओर जहां जमीन में जल संरक्षण करता है। यहां के उथले कुओं का जल स्तर बढ़ता है। वहीं दूसरी ओर फसल को कीट प्रकोप से बचाता है क्योंकि वहां अनेक फसल के कीटों के दुश्मन निवास करते हैं। जिससे रोग लगते ही नहीं हैं। इसी प्रकार रासायनिक खाद की जगह देशी गाय के गोबर-गोमूत्र से बने जीवामृत व अमृतपानी का उपयोग करें। यह उसी प्रकार काम करता है जैसे दूध को जमाने के लिए दही। इससे भूमि में उपज बढ़ाने में सहायक जीवाणुओं की संख्या बढ़ेगी और उपज बढ़ेगी। एक गाय के गोबर-गोमूत्र से 30 एकड़ तक की खेती हो सकती है।

कुल मिलाकर, इस जीरो बजट खेती से भूमि और पर्यावरण का संरक्षण होगा। जैव विविधता बढ़ेगी, पक्षियों की संख्या बढ़ेगी। भूमि में उत्तरोत्तर उपजाऊपन बढ़ेगा। किसानों की उपज का ऊंचा दाम मिलेगा और जो आज ग्लोबल वार्मिंग हो रही है, जिसमें रासायनिक खेती का योगदान बहुत है, उससे निजात मिल सकेगी। किसान और गांव आत्मनिर्भर बनेंगे और खुशहाल होंगे। ❑

उपजाऊ मिट्टी खाते शहर

❑ डॉ. कश्मीर उप्पल

रासायनिक खेती, नदियों और भू-जल स्तर जैसे पर्यावरणीय विषयों पर लिखना किसी अंधेरे में चीख की तरह लगता है। टी. वी. और समाचार-पत्रों में बढ़ता तापमान प्रतिदिन हेडलाइन्स बनता है। उसके साथ ही पंखों, कूलरों और एयरकंडीशनर के विज्ञापन भी बढ़ जाते हैं और उनकी बिक्री भी। परंतु ओजोन-परत और घटता वन क्षेत्र हमारी चिन्ता का विषय नहीं बनता। शहरों और गांवों में नित नई खुलती दवाई की दुकानें अब हमें नहीं डरातीं। सिने अभिनेता आमिर खान ने 24 जून के 'सत्यमेव जयते' कार्यक्रम में रासायनिक खेती के 'अभिशापों' और जैविक खेती के 'वरदानों' को देश के सम्मुख रखा। लेकिन अभी तक समाज और सरकार की ऐसी कोई प्रतिक्रिया सामने नहीं आयी है कि कोई रासायनिक खेती के दुष्परिणामों से चिन्तित हो। पंजाब को आधुनिक कृषि का मॉडल मानकर उसका अनुकरण करने से पूरे देश में भी रासायनिक और यांत्रिक खेती के दोष फैल गये हैं। किसी भी राज्य के आंतरिक, आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक चरित्र को समझे बिना उसका अनुगमन करना खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुओं और ताकत की दवाइयों की तरह पंजाब की खेती भी एक झूठा विज्ञापन है। पंजाब में व्यास नदी के ऊपर का क्षेत्र जो पाकिस्तान की सीमा के पास है मांझा कहलाता है। व्यास नदी और सतलुज नदी के बीच का क्षेत्र दोआब कहलाता है। पंजाब के दक्षिण-पश्चिम का क्षेत्र मालवा कहलाता है। यहां के फिरोजपुर, फरीदकोट, मुक्तसर, भटिण्डा, मांसा और संगरूर जिले रासायनिक खेती और प्रदूषित जल से सर्वाधिक प्रभावित हैं। अब यह रोग पाटियाला और अमृतसर की ओर फैल रहा है। वैसे पूरा पंजाब ही रसायनों से अटा पड़ा है।

गठन के समय पंजाब में 12 जिले थे, जिनकी संख्या अब बढ़कर 22 हो गयी है। दोआब क्षेत्र में विदेशों में रहने वाले भारतीयों (एनआरआई) की संख्या सबसे अधिक है और यहीं रसायनों और कीटनाशकों के उपयोग को सर्वाधिक प्रोत्साहन भी मिला है। एनआरआई द्वारा विदेशों से भेजे गये धन से आयी समृद्धि को भी पंजाब में खेती से आयी समृद्धि समझने की भूल भी होती है। यहां ठेके पर खेती की नयी परम्परा में बड़े किसान छोटे-छोटे किसानों की जमीन ठेके पर लेते हैं खेती की बढ़ती लागत भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। जमीन के मालिक अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने को बाध्य हैं। एक आश्चर्यजनक सत्य ही जानकारी हुई कि यहां जानबूझकर आलू की फसल बड़े पैमाने पर लेकर इसके दाम गिरा दिये जाते हैं। आलू से नकली ग्रीस बनाने का धंधा बड़े पैमाने पर होता है। आलुओं को गलाकर उसमें मोबिल-आईल के मिश्रण से नकली ग्रीस बनता है। मैं अभी पंजाब की यात्रा पर था। पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रों का नया स्वरूप देखकर दुख ही होता है। यहां ग्रामीण क्षेत्रों में मुश्किल से 2 घंटे खेतों को बिजली उपलब्ध होती है।

मेरी यात्रा तीन रिश्तेदारों की मृत्यु से होने वाले भोगों और अंतिम-अरदास से जुड़ी थी। इनमें दो की मृत्यु खेती के पर्यावरणीय खतरों से घटित हुई थी। बरनाला शहर में एक लोकप्रिय शिक्षिका रिश्तेदार की मृत्यु कैंसर से हुई थी। बरनाला शहर में ठाठ गुरुद्वारे में 18 जून को सम्पन्न अंतिम अरदास में पंजाब और हरियाणा के अकाली, कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी, स्थानीय दलों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ लेखक संघ के प्रतिनिधि भी श्रद्धांजलि सभा में उपस्थित थे। प्रारम्भ में ही श्रद्धांजलि सभा के तेज तर्रार संचालक ने रासायनिक खेती और जल प्रदूषण से होने वाली मौतों का विवरण दिया। कार्यक्रम के संचालक ने कहा ''हम इसी तरह हर दूसरे-तीसरे दिन किसी न किसी की कैंसर से हुई मृत्यु पर एकत्रित होते हैं। हम स्वर्गवासी को श्रद्धांजलि देकर अपने-अपने घर चले आते हैं, पर खेती और पानी के प्रदूषण पर चर्चा भी नहीं करते हैं।''

इसके बाद अकाली दल के एक क्षेत्रीय बड़े नेता ने अपने उद्‌बोधन में डपटते हुए कहा ''यह अवसर 'राजनीति' करने का नहीं है। हमें मृत्यु के अवसर पर मृत-आत्मा के गुणों और कामों के बारे में ही बोलना चाहिए।'' इसके बाद उन्हीं के आदेशानुसार सभा चलती रही। वर्तमान एवं पूर्व विधायक और सांसद अपनी-अपनी बात कह चलते बने। सभी ने मृतका को गौरवान्वित किया लेकिन जीवन शर्मिन्दा-सा बैठा रहा। गुरुद्वारे के हॉल में लंगर चल रहा था और सभी आर. ओ. के कन्टेनरों से पानी पी रहे थे। रिवर्स--आस्मोसिस (आर. ओ.) के पानी के साथ चलता लंगर आधुनिक पंजाब का एक दृश्य बना रहा था। पंजाब के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आर. ओ. सिस्टम से साफ किया पानी पीना समृद्ध और पढ़ा-लिखा होने की निशानी है। क्या यही है हमारा पंजाब?

वैज्ञानिक शोधों से सिद्ध हुआ है कि आर.ओ. पद्धति से भारी धातुएं जैसे आर्सेनिक, क्रोमियम, लोहा आदि की तरह यूरेनियम को दूर भी नहीं किया जा सकता है। पंजाब सरकार ने कई गांवों में आर.ओ. सिस्टम लगाये हैं जहां गरीबों को न्यूनतम मूल्य पर पीने का पानी दिया जाता है। पर पशु तो वही पानी पीते हैं जो तीन सौ फुट नीचे से खींचा जाता है। पशुओं के दूध में दूषित पानी का असर लोगों तक भी पहुंचता रहता है। फरीदकोट के बाबा फरीद मंदबुद्धि बच्चों के संस्थान→

दस्तावेज

क्या हिंसा से क्रांति होती है?

❑ जयप्रकाश नारायण

[मुजफ्फरपुर (बिहार) के पार्श्व में स्थित मुसहरी प्रखण्ड में नक्सली समस्या की सघनता के दिनों में, डेढ़ साल तक रहने के बाद जयप्रकाश नारायण ने ग्रामीण भारत की यथार्थ तस्वीर इस निबंध में प्रस्तुत की है। इसकी विषय-वस्तु आज भी उतनी ही प्रासंगिक और जीवंत है। **–सं.**]

राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित ग्रामीण हिंसा में वृद्धि को देखते हुए देशभर में इधर बहुत चिन्ता प्रकट की गयी है। इसमें संदेह नहीं है कि अंशतः यह हिंसा राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित कृत्रिम प्रयासों का परिणाम है; लेकिन यदि गरीबी, बेकारी और बहुत सारे सामाजिक-आर्थिक अन्याय कायम नहीं होते और इससे हिंसा के पनपने के लिए जमीन नहीं तैयार की गयी होती, तो यह हिंसा जड़ कदापि नहीं पकड़ती। यदि वर्तमान सुधार-कानून ही समुचित रूप से कार्यान्वित कर दिये जायं, तो ग्रामीण क्षेत्र में एक लघु सामाजिक क्रांति हो जायेगी। मेरा यह कथन अगर सत्य है तो इसका विपर्यय भी उतना ही सत्य है। *ग्रामीण हिंसा में यह जो वृद्धि हम देख रहे हैं, वह इतने लंबे अर्से तक इन कानूनों को कार्यान्वित न कर सकने का ही अनिवार्य परिणाम है। इस हिंसा के जनक तथाकथित नक्सलवादी नहीं हैं, बल्कि वे हैं, जिन्होंने लगातार इतने वर्षों तक उक्त कानूनों की अवज्ञा की है और उनके उद्देश्यों को पराजित किया है—चाहे वे राजनेता हों, प्रशासक हों, भूमिपति हों या महाजन हों।* वे बड़े किसान, जिन्होंने हदबन्दी कानून को बेनामी तथा फर्जी बन्दोबस्तियों के जरिये धोखा दिया है; वे भद्र लोग, जिन्होंने सरकारी जमीन और गांव की सामूहिक भूमि हड़प रखी है; वे भूमिपति, जिन्होंने अपने बटाईदारों को कानूनी हक देने से हमेशा इनकार किया है और उन्हें उनकी जमीन से बेदखल किया है तथा जो अपने मजदूरों को कम मजदूरी देते रहे हैं और उन्हें बासगीत भूमि से भी वंचित कर रखा है; वे व्यक्ति, जिन्होंने धोखाधड़ी या जबरदस्ती से कमजोर वर्ग के लोगों की जमीन छीन ली है; वे तथाकथित ऊंची जाति के लोग जो हरिजन भाइयों को हमेशा घृणा की नजर से देखते रहे हैं, उनके साथ बुरा व्यवहार करते रहे हैं तथा उनके प्रति सामाजिक भेदभाव बरतते रहे हैं; वे महाजन जिन्होंने अत्यधिक ब्याज वसूल करते हुए गरीबों तथा कमजोरों की जमीन अधिकृत कर ली है; वे राजनेता, प्रशासक और सभी अन्य लोग जिन्होंने इन अन्यायपूर्ण कार्यों में मदद पहुंचायी है या उन्हें प्रोत्साहित किया है—ये सभी लोग इस स्थिति के लिए जिम्मेवार हैं कि आज गरीबों और दलितों के मन में अन्याय, दुःख और उत्पीड़न-जन्य भावना इकट्ठी हो गयी है जो अब हिंसा के रूप में बाहर निकलने का मार्ग ढूंढ़ रही है। *इस स्थिति के लिए ये कानूनों की अदालतें और न्याय पाने की पद्धतियां तथा उसके लिए चुकाये जाने वाले मूल्य भी जिम्मेवार हैं, जिन्होंने हमारे समाज के दुर्बल वर्गों के साथ षड्यंत्रपूर्वक न्याय नहीं होने दिया है। फिर यह शिक्षा की व्यवस्था*

→में भरती होने वाले बच्चों के शरीर में ये धातुएं और यूरेनियम पाये गये हैं। मां के दूध के साथ प्रदूषित पानी बच्चों तक पहुंच रहा है। सतलुज नदी लुधियाना जैसे महानगर के औद्योगिक क्षेत्र से होकर मालवा में पहुंचती हुई जल प्रदूषण के कारण काली पड़ जाती है।

पंजाब के कई जिलों विशेषकर जालंधर और लुधियाना के आसपास के कई गांवों के खेतों में कई-कई फुट गहरे खेत मिलते हैं। बढ़ते शहरीकरण और आधुनिक गांवों में पक्के मकानों के लिए करोड़ों की संख्या में ईंटों की आवश्यकता होती है। जमीनें बहुत महंगी होने के कारण चिमटी-भट्टे तो एक निर्धारित स्थान पर है। पर ईंट बनाने के लिए मिट्टी खेतों से प्राप्त की जाती है। यही पंजाब के ईंट-उद्योग की परम्परा है। खेतों की एक बित्ता (करीब 12 इंच) गहरी एक एकड़ में फैली मिट्टी 3 वर्ष के लिए एक लाख रुपये में बिकती है। अधिकांश खेत तीन से चार फीट गहरे कटे मिलते हैं। इस प्रकार ऊंचे-नीचे खेतों से सिंचाई की समस्या भी उत्पन्न होती है। अधिकांश छोटे किसान अपने खेत ईंट बनाने के लिए ठेके पर दे देते हैं। किसानों को यह समझाया जाता है कि तीन-चार फीट गहरी मिट्टी हटा लेने से नयी और अधिक उपजाऊ मिट्टी मिलती है जिससे फसल अधिक होती है। जबकि प्रमाण इसके विरुद्ध हैं।

बरनाला से टैक्सी द्वारा अमृतसर की ओर जाते हुए जीरा नामक कस्बे में सैकड़ों ट्रैक्टर सड़क मार्ग पर दोनों तरफ खड़े थे। ये ट्रैक्टर किश्त न चुका पाने के कारण और लागत बढ़ने से खेती महंगी होने के कारण बिकने और नीलाम होने के लिए खड़े थे। किसान अपने पशु और ट्रैक्टर बेचकर कर्ज चुकाने को बाध्य हैं। इस वर्ष जून माह तक वर्षा न होने से धान की बोनी उतनी ही जमीन पर हो सकी है जितनी 2 घंटे में प्राप्त बिजली से खेत पानी से भरे जा सकते हैं। पंजाब की कृषि के अनुभव से लगता है कि पंजाब के किसान किसी बड़े संकट की तरफ बढ़ रहे हैं। पंजाब की आधुनिक कृषि-क्रांति के इस असफल मॉडल से हम सीख सकते हैं कि झूठ पर आधारित व्यवस्था अधिक दिन नहीं चल पाती है। पंजाबी संस्कृति का उद्घोष वाक्य 'सत् श्री अकाल' अर्थात् सत्य की विजय हर समय (काल) में होती है। प्रश्न है पंजाब के किसानों को और कितनी अग्नि-परीक्षाएं देनी होंगी। ❑

और नियोजन का ढंग भी जिम्मेवार है, जो अपने गलत तरीके से शिक्षित, निराश और बेकार युवकों की बढ़ती हुई सेना तैयार कर रहे हैं और आर्थिक विषमताओं को भी बढ़ा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप विभिन्न वर्गों का और भी अधिक ध्रुवीकरण हो रहा है। और फिर ये राजनेता भी जिम्मेवार हैं, जिनकी स्वार्थ-साधन की भावना ने लोकतंत्र को, दलीय व्यवस्था को और उसकी विचारधाराओं को मजाक की वस्तु बना दिया है।

जब स्थिति ऐसी है और जब लोकतंत्र की संस्थाएं और प्रक्रियाएं दयनीय रूप से त्रुटिपूर्ण हैं तो क्या आश्चर्य कि असंतोष, निराशा, क्षोभ और अभाव कुछ लोगों के दिमाग को हिंसा की तरफ मोड़ दे और वे उसको ही एकमात्र तारक शक्ति मान बैठें?

लेकिन यह सब तो हम समझ सकते हैं। फिर भी यह पूछना प्रासंगिक है कि क्या हिंसा तारक सिद्ध होगी, जैसा कि उसके बारे में विश्वास दिलाया जाता है? ऐसा तो नहीं है कि हम इतिहास की प्रथम हिंसक क्रांति की प्रभात-वेला में हैं, जिससे यह अपेक्षा हो कि वह 'धरती के अभागों के लिए' मुक्ति का नया दिन ला देगी। अब तक ऐसी अनेक क्रांतियां हो चुकी हैं और इस कारण उनकी वह चमक बहुत कुछ धूमिल हो चुकी है और साथ ही उनके प्रति विकर्षण की भावनाएं पैदा हुई हैं। इस प्रश्न की विस्तारपूर्वक समीक्षा करने के लिए यह स्थान नहीं है। फिर भी उसे समुचित परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए कुछ मुद्दों की चर्चा यहां की जा सकती है।

पहली बात यह है कि राजनीतिक हिंसा क्रांतिकारी और प्रतिक्रांतिकारी भी हो सकती है। यह निश्चित नहीं है कि हिंसक क्रांतिकारी आंदोलन हमेशा सामाजिक क्रांति की तरफ ही हमें ले जायेगा। उसमें से प्रतिक्रिया भी पैदा हो सकती और अंत में वह एक फासिस्ट-तानाशाही का रूप ले सकती है। (नक्सलवादी हिंसा प्रति-हिंसा को जन्म देने लगी है।) अथवा, अंततः उसमें से अराजकता, व्यापक दुःख-कष्ट, राष्ट्रीय विघटन एवं गुलामी के परिणाम भी पैदा हो सकते हैं। जो लोग हिंसा का प्रचार करते हैं, उन्हें इन संभावनाओं पर विचार करना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि *क्रांतियां क्रांतिकारियों की बिलकुल मर्जी पर ही नहीं हुआ करतीं। क्रांति की सफलता के लिए सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियां परिपक्व होनी चाहिए।* इसमें पूरी शताब्दी लग सकती है, जैसा कि इतिहास में अकसर हम देखते हैं। भारत में हिंसा के जो पक्षधर हैं, वे तेलंगाना के रक्तपात के समय से ही क्रांति करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन इतने वर्षों में वे कहां तक आगे बढ़े हैं? *हिंसक क्रांति के आयोजन में कम समय लगता है, यह एक भोली मान्यता है; इससे अधिक गलत और कोई बात नहीं हो सकती।*

तीसरी बात यह है कि लम्बी तैयारी के बाद जब क्रांति अंततः सफल भी होती है, तो उसकी इस 'सफलता' का क्या अर्थ होता है? उसका अर्थ इतना ही होता है कि पुरानी समाज-व्यवस्था को ध्वस्त किया जा चुका है। लेकिन ध्वंस ही किसी क्रांति का लक्ष्य नहीं हो सकता। उसका लक्ष्य तो हमेशा एक नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है। लेकिन हिंसक क्रांति के सफल होने के बाद क्रांतिकारियों को, जिनका पहला काम हमेशा यह देखा गया है कि वे सत्ता के लिए आपसी खूनी संघर्ष में पिल पड़ते हैं, अपने सपनों का समाज—जो सपने आपसी रक्तपात में बह न गये हों—बनाने में कितना समय लगता है? इतिहास में क्या ऐसी एक भी सामाजिक क्रांति हुई है, जो अपने अभीष्ट आदर्शों को प्राप्त करने में सफल हुई हो? जरा फ्रेंच-क्रांति पर तथा उसके समानता, स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व के आदर्शों पर विचार कीजिये। फिर रूसी क्रांति और लेनिन के इस उद्घोष पर भी विचार कीजिये कि क्रांति के बाद संपूर्ण सत्ता सोवियतों (पंचायतों)—श्रमिक सोवियतों, सैनिक सोवियतों, किसान सोवियतों—के हाथ में होगी। रूसी क्रांति हो गयी और अब भी रूसी जनता के सर पर पार्टी की तानाशाही मजबूती से कायम है। कोई नहीं कह सकता कि यह तानाशाही और कितने दिनों तक कायम रहेगी और सोवियतों के हाथ में सत्ता कब आयेगी।

चौथी बात यह है कि यद्यपि सभी क्रांतियों में केन्द्रीय प्रश्न सत्ता का ही होता है और सभी क्रांतियों का आयोजन जनता के लिए सत्ता प्राप्त करने के नाम पर किया जाता है तथापि सत्ता हमेशा ही क्रांति करने वालों में से ऐसे मुट्ठीभर लोगों द्वारा हड़प ली जाती है, जो सबसे ज्यादा निर्मम होते हैं। ऐसा होना अनिवार्य ही है, क्योंकि सत्ता बंदूक की नली से निकलती है और बंदूक सामान्य जनता के हाथ में नहीं, बल्कि हिंसा के उन संगठित तंत्रों के हाथ में रहती है जो हर सफल क्रांति में से 'क्रांतिकारी' सेना तथा उसकी सहायक जमातों के रूप में पैदा होते हैं। इन तंत्रों पर जिनका नियंत्रण होता है, उनके ही नियंत्रण में सत्ता रहती है। यही कारण है कि हिंसक क्रांति हमेशा किसी-न-किसी प्रकार की तानाशाही को जन्म देती है। और फिर यही कारण है कि क्रांति के बाद शासकों एवं शोषकों का एक नया विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग कालांतर में पैदा हो जाता है, जिसके अधीन बहुसंख्यक जनता फिर एक बार गुलाम हो जाती है।

इसलिए मैं तो कहूंगा कि *नहीं, हिंसा कभी तारक नहीं सिद्ध हुई है, जैसा कि पीड़ित और शोषित लोगों को समझा दिया गया है।* टॉल्स्टॉय की एक प्रसिद्ध उक्ति है, जिसको थोड़ा बदलकर कहा जा सकता है कि *क्रांतिकारियों ने जनता के लिए सब कुछ तो किया है, केवल पीठ पर से उतरने का कष्ट नहीं किया है!*

यह नहीं मान लेना चाहिए कि उपर्युक्त चर्चा केवल मार्क्सवादी-लेनिनवादी साम्यवादियों को, जो आम तौर पर नक्सलवादी कहलाते हैं, ध्यान में रखकर की गयी है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि केवल वे ही इस

देश में रक्त-क्रांति के पुजारी हैं। रक्त-क्रांति में विश्वास रखने वाली दूसरी अनेक जमातें हैं, जिनमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर, रिवोल्यूशनरी कम्युनिस्ट पार्टी, बोलशेविक पार्टी, फारवर्ड ब्लाक (मार्क्सवादी) आदि शामिल हैं। इनमें जो भेद है, वह केवल इस बात को लेकर है कि (क) जन-विद्रोह के आवाहन की उपयुक्त घड़ी क्या होगी; तथा (ख) अंतरिम काल में अपनायी गयी रण-नीति (स्ट्रेटेजी) क्या होगी? नक्सलवादियों की दृष्टि में क्रांति करने की घड़ी बस अभी ही है। अन्य लोगों को लगता है कि यह बचकानी बहक या वामपंथी दुस्साहसिक कार्रवाई मात्र है। लेकिन खुद उनके बीच व्यूह-रचना के प्रश्न को लेकर तीव्र संघर्ष होते हैं, और इन संघर्षों के क्रम में शास्त्र-वाक्यों को खूब तोड़ा-मरोड़ा जाता है। ऐसा भी नहीं कि उनके आपसी मतभेद निश्चित और अटल होते हैं; वे स्थान और रूप बदलते रहते हैं, परस्पर-विलीन तथा परस्परारूढ़ होते रहते हैं। लेकिन इस एक बात पर वे सभी एकमत होते हैं कि अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सशस्त्र जन-विद्रोह अनिवार्य है।

यदि विशेष रूप से केवल नक्सलवादियों को ही आलोचना का विषय बनाया जाय तो उसके दो आधार हो सकते हैं। उनमें से एक है वह पद्धति, जिसका वे अनुसरण कर रहे हैं : मार्क्सवाद और लेनिनवाद, जिनकी व्याख्या स्वयं उन आचार्यों ने की है, से परिचित कोई भी व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) की कार्यपद्धति और विचारधारा क्रांतिकारी होने के बजाय आतंकवादी है; और यद्यपि वे माओ का नाम बहुत लेते हैं, वे माओवादी भी नहीं हैं। चे-ग्वेवारावादी हो सकते हैं, लेकिन किसी ने चे-ग्वेवारा को मार्क्सवादी-लेनिनवादी नहीं कहा है। आतंकवाद, जो सदैव निराशा से उत्पन्न होता है कुछ निराश युवजनों तथा पिछड़े हुए और क्षुब्ध गिरिजनों एवं गांव के गरीब लोगों के बीच एक तंग क्रांतिकारी आधार तैयार कर दे सकता है, लेकिन ये तत्त्व विदेशी सहायता के बावजूद इतने कमजोर होंगे कि वे स्वयं सच्चे अर्थ में स्वदेशीय सामाजिक क्रांति नहीं कर सकते। वास्तव में आतंकवादी हिंसा से अधिक संभव यह है कि समाज के सबल वर्गों की प्रतिहिंसा को उत्तेजना मिलेगी और उसके परिणामस्वरूप अंततः किसी-न-किसी प्रकार अधिनायकवाद ही स्थापित हो जायेगा।

दूसरा आधार है, उनका राष्ट्रवाद-विरोध। राष्ट्रवाद के कुछ रूप आपत्तिजनक हो सकते हैं, जैसे आक्रमणकारी, विस्तारवादी और नवउपनिवेशवादी राष्ट्रवाद। लेकिन भारतीय राष्ट्रवाद उस श्रेणी में नहीं आता है। दूसरी तरफ चीन का *हान राष्ट्रवाद,* खासकर उसका वह रूप जो उसके इस दावे से प्रकट होता है कि कोई भी क्षेत्र, जो साम्राज्यवादी पेकिंग का कभी अंग रहा था या उसके असर में था, हमेशा के लिए चीन का अंग है, आपत्तिजनक ही नहीं, खतरनाक राष्ट्रवाद है। कुछ हद तक सभी प्रकार के साम्यवादियों में—शायद मार्क्सवादियों में ही सबसे कम—परदेशीय भक्ति का दोष होता है। लेकिन 'अध्यक्ष माओ हमारे भी अध्यक्ष हैं', यह नारा राष्ट्रवाद-विरोध में तथा विदेशी मालिकों के अनुसरण में सबको मात कर देता है। दूसरे देशों से विचार ग्रहण करना और उनकी कार्य-पद्धति अपनाना—ऐसा तो हम हमेशा करते हैं—तथा दूसरे देशों के नेताओं को अपने वैचारिक नेता के रूप में स्वीकार तक कर लेना एक बात है, लेकिन किसी विदेशी राज्य के अधिपति को अपने भावी क्रांतिकारी राज्य के अधिपति के रूप में मान्य करना बिलकुल दूसरी बात है। स्टालिनवाद के उत्थान के दिनों में भी ऐसी बात कभी नहीं देखी गयी थी। लेनिन और स्टालिन अपनी अंतरराष्ट्रीयता के बावजूद रूसी राष्ट्रवादी थे; यद्यपि लेनिन, खासकर क्रांति की प्रारम्भिक स्थितियों में, विश्वक्रांति की सफलता के लिए जिसकी प्रतीक्षा वे उत्सुकतापूर्वक कर रहे थे, सम्भवतः रूस के राष्ट्रीय हितों का बलिदान तक करने के लिए तैयार हो जाते। स्वयं माओ एक अच्छे राष्ट्रवादी थे, उन्हें चीन के इतिहास और उसकी संस्कृति पर गौरव था और वे चीन के पुराने साम्राज्यवादी शासकों के ढंग से विश्व पर अपने देश का आधिपत्य कायम करने का सपना देखते थे।

इन घातक दोषों के बावजूद वर्तमान स्थिति के प्रति नक्सलवादियों की सहिष्णुता लोगों को आकृष्ट करती है। इसके अलावा उनके द्वारा तत्काल क्रांति ले आने के प्रयास से कम-से-कम एक सेवा यह हुई है कि उसने आम तौर पर जनता की सामाजिक चेतना को जागृत कर दिया है और खास तौर से, सत्ताधारियों को भूमि-सुधार तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक सुधारों को शीघ्र अमल में लाने के लिए मजबूर किया है। दुर्भाग्यवश इस देश में राजनीति का ढंग ऐसा रहा है कि यद्यपि सरकारें चिल्ला-चिल्लाकर शान्तिमय तरीकों में विश्वास जाहिर करती रही हैं, लेकिन उनकी आंखें तभी खुली हैं, जब हिंसा के प्रहार पर प्रहार उन पर हुए हैं।

इस विषय में एक बात और। यह स्मरण रखना चाहिए कि नक्सलवाद के नाम पर जो कुछ होता है, वह सब वास्तविक नक्सलवादी कार्रवाई नहीं होती। नक्सलवादी हिंसा के पीछे अनेक मिश्रित प्रेरणाएं काम करती हैं, जिनमें विशुद्ध अपराध-वृत्ति से लेकर वैयक्तिक एवं पारिवारिक विग्रह एवं शत्रुताएं तक शामिल हैं। विशुद्ध अपराध-कर्म करने वाले भी अपने अपराधों को 'माओ जिन्दाबाद' के नारों से अलंकृत करने लगे हैं और वे सभी धमकी के पत्र, जिनके बारे में कहा जाता है कि नक्सलवादियों की ओर से भेजे गये हैं, वास्तव में वैसे नहीं होते। इसके साथ ही यह भी मालूम होता है कि अपराधकर्मियों, जैसे डकैतों तथा नक्सलवादी क्रांतिकारियों के बीच एक हद तक, शायद सुविधानुसार मेल के तौर पर समझौता हो गया हो। *('आमने-सामने' से साभार)*

नर्मदा तट पर जल-सत्याग्रह

❑ विमलभाई

पानी गरम था और पैर के नीचे चिकनी, मुलायम, धंसती, सरकती मिट्टी। इसी में से चलकर अंदर गंदे पानी में लगभग 20 गांवों के प्रतिनिधियों के रूप में महिला-पुरुष बैठे थे। पीछे बैनर था 'नर्मदा बचाओ आंदोलन', 'जमीन नहीं तो बांध खाली करो।' जोश के साथ नारे लग रहे थे, लड़ेंगे-जीतेंगे, वगैरह-वगैरह। जो नारे नर्मदा से निकले और देश के आंदोलनों पर छा गये थे, यह जगह अजनाल नदी किनारे नहीं बल्कि अजनाल के रास्ते इंदिरा सागर बांध में रुके नर्मदा के पानी के हैं। अजनाल के किनारे का टप्पर अब इंदिरा सागर बांध के जलाशय के किनारे आ गया है, खेती-पेड़ सब डूबे हैं। यहां नर्मदा बचाओ आंदोलन के नेतृत्व में जल-सत्याग्रह चालू है। मध्य प्रदेश के तीन जिलों में इंदिरा सागर का जलाशय फैला है, खंडवा, देवास और हरदा के 213 गांवों को डुबोया है। 2005 में चालू हुए बांध ने अब तक 3000 करोड़ का फायदा दिया है और लगभग इतना ही पैसा बांध विस्थापित लोगों के पुनर्वास, अनुदान आदि के लिए चाहिए। 41 और गांवों में डूब आ रही है। इस क्षेत्र में भारतीय सर्वेक्षण विभाग के सर्वे को मध्य प्रदेश शासन ने रोक दिया।

हरदा से लगभग 26 किमी दूर बिछौला-गांव, फिर वहां से जल-सत्याग्रह स्थल 5 कि. मी. था, से हम जंगल होते हुए हनीफाबाद टोला पहुंचे थे। जहां लोग खाना खा रहे थे। पेड़ के नीचे नरमदा प्रसाद भी था, दोनों पैर अशक्त, तीन पहिए की साइकिल पर, साथ के बच्चे उसे धकेल कर पानी में जाते हैं। सिरालिया गांव में अपना मकान बांध में डूबा चुका नरमदा प्रसाद हर महीने सरकार से 150 रुपये पाता है। आदिवासी है। मन में जोश है, उसका शरीर उतना सहयोग नहीं देता है। पर हक की लड़ाई है। पूछता है 150 रुपये में क्या होता है? बिछौला गांव की कृष्णाबाई दुबली-पतली गहरे रंग की। प्रशासन की आंख में किरकिरी है। अपना पैर दिखा रही थी। पैर में पिछले साल पानी में खड़े होने के कारण एग्जीमा हो गया है। कितने ही और महिला-पुरुषों के पैर सड़ गये थे। एक महिला की आंखों से दीखना काफी कम हो गया है। जलाशय का पानी घरों तक आ गया है। कई बच्चे पिछले वर्षों में डूबकर मर गये हैं। अब करें भी तो क्या करें। सिवाय अहिंसात्मक संघर्ष के नये-नये आयामों को लेकर आगे बढ़ना। सरकार तो सिर्फ प्रचार कर रही है कि बांध से हजारों करोड़ कमाया। पर कमाया कैसे? जब आप पुनर्वास पर्यावरण के खर्चों को ही समाप्त कर देंगे तो आपका फायदा तो स्वतः ही बढ़ा हुआ दिखेगा।

वर्ष 2012 में नर्मदा बचाओ आंदोलन ने ओंकारेश्वर बांध और इंदिरा सागर बांध के विस्थापितों के सवालों पर जल-सत्याग्रह किया था। ओंकारेश्वर में सरकार ने मांगें मानीं और दूसरी तरफ इंदिरा सागर में आंदोलन-कारियों पर दमन किया गया। दसियों दिनों से पानी में खड़े लोगों को जेल में डाला गया। ओंकारेश्वर में जो मांगें मानी गयीं, उन्हें भी पूरा नहीं किया। 1 सितंबर, 2013 को पूरा जल-सत्याग्रह का इलाका पुलिस छावनी में बदल दिया गया था। कृष्णाबाई ने बताया कि हम 1 सितंबर को उंवागांव में बैठे तो पुलिस ने बैठने नहीं दिया, गिरफ्तार करके हरदा ले गयी। दूसरी टुकड़ी बिछौला गांव में पानी में बैठ गयी, उसे भी 2 तारीख को पुलिस हरदा जेल ले गयी। 2 सितंबर को हनीफाबाद टोला में भी लोग बैठ गये, 3 सितंबर को पुलिस ने उन्हें पानी में से निकालकर दूर बाहर करके छोड़ दिया। 7 सितंबर से लोग दुबारा बैठे। तब से लगातार बैठे हैं, इस बार पुलिस नहीं आयी। सरकार समझ गयी है कि लोग नहीं मानेंगे।

नर्मदा बचाओ आंदोलन की सशक्त महिला नेता चित्तरूपा पलित को इस बार जल-सत्याग्रह के शुरुआती दिनों में ही पुलिस घसीट कर ले गयी। 9 दिनों बाद इंदौर की जेल से छूटी। वह कहती हैं कि पुलिस से कोई लड़ाई नहीं है। उस पर सैकड़ों मुकदमे हैं। लंबे उपवासों के दौर झेले हैं। वह सर्वोच्च न्यायालय में प्रभावितों के हक के लिए भी आंदोलन केस स्वयं लड़ती हैं। 'लाठी गोली खायेंगे, आगे बढ़ते जायेंगे' आंदोलन का नारा है। आंदोलन को तोड़ने के लिए 144 धारा का इस्तेमाल करना पुराना तरीका होता है, जिसका इस्तेमाल खूब हुआ पर लोगों की नई-नई टुकड़ियां कमान संभालती गयीं। बिछौला में खुद उपजिलाधिकारी, हरदा ने माईक से घोषणा की कि आप लोग पानी में से निकल आओ नहीं तो जबरदस्ती करेंगे। कृष्णाबाई बता रही थीं कि ''हमने पूछा, हमारा अपराध बताओ? तो उनके पास जवाब नहीं था। पुलिस ने चारों तरफ से घेरा और बाहर किया। हम डरते नहीं हैं।''

पुनर्वास नहीं, जमीन नहीं, जो पैसा दिया भी गया वह भी इतना कम की स्वयं से शर्म आ जाये। दस छोटी व सालभर बहने वाली नदियां नर्मदा में मिलती हैं। किसी में बैकवाटर सर्वेक्षण नहीं हुआ। नतीजा हुआ कि घर डूबे तो कहीं खेत, किसी का घर नापा पर खेत छोड़ा जबकि वह उसी सीध में है। पूरा सर्वे ही अपने में एक उलझी-सी ऊन है। सभी नदियों के किनारे गांवों का नक्शा बहुत अजीब हो गया है। पानी कहीं से भी आने की बात है वैसे सर्वेक्षण पर

भरोसा भी नहीं। पूरे देश से लेकर नर्मदा में भी यह नया नहीं है। चाहे वह तवा बांध हो या बरगी बांध, जिसमें 101 गांव का सर्वे था और डूबे 162 गांव। लोग सोते रहे और उनके घरों में पानी आ गया था। बिछौला गांव की लाडकी बाई की 19 में से 10 एकड़ जमीन डूबी, कुआं, 50 सागौन के पेड़, आम के अनेक पेड़। मिला सिर्फ 4 लाख रुपये जमीन का और 1700 रुपये पेड़ों का।

''अपने ही खेत में उगे पेड़ जब हम मांगते थे अपने मकान में लगाने के लिए, तो नहीं मिलते थे। अब हमारे सामने ही सारे पेड़ काटकर सरकार ले गयी। घर के दरवाजे से 5 मीटर की गली के पार वाला मकान डूब में लिया है यानी पानी वहां आया तक क्या होगा?'' यहां की धरती खूब उपजाऊ है, गेहूं, मूंग, चना, सोयाबीन की फसलें मुख्य हैं। जल-सत्याग्रह में बैठे भरत गुर्जर ने कहा कि हम सब अब मजदूर ही हो गये हैं। जमीनें तो गयीं। उसके चेहरे का दर्द जमीन बदले-जमीन की मांग की जरूरत बता रहा था। इसके साथ उसने भारत के राष्ट्रपति का 18 जुलाई को 'एसएमएस पोर्टल' के आरंभ के अवसर पर भेजा एसएमएस दिखाया। उसमें लिखा था ''मानसून खुशहाली लायेगा, खाद्य सुरक्षा लायेगा।'' भैया हमारी तो जमीनें डूब गयी हैं मानसून में बिना जमीन कौन-सी खाद्य सुरक्षा?''

आलोक अग्रवाल, कानपुर आईआईटी से पढ़े हैं। नर्मदा के बांधों और विस्थापितों के हक के लिए लड़ रहे हैं। कहते हैं कोर्ट से जमीन का मसला तय होगा पर सरकार जो कर सकती है वह करे। मध्य प्रदेश में विधान सभा चुनाव होने वाले हैं। लोग देखेंगे। पर हमारी लड़ाई तो लंबी है। थोड़ा-थोड़ा करके ही आगे कुछ होता है। उत्तराखंड आपदा के समय तीर्थयात्रियों के लिए प्रदेश मुख्यमंत्री बहुत चिन्तित थे, उनके दुख में द्रवित थे। 2011 में दस हजार एकड़ भूमि गो-संवर्धन के लिए सहारा कंपनी को दिये। गौ माता के लिए चिन्तित मुख्यमंत्रीजी उनके लिए भूमि की आवश्यकता बतायी। बात गले नहीं उतरती, आदिवासी व समृद्ध किसानों की जमीनें हजारों गांवों में फैली हैं। सरकार ने उनकी जमीन छीनी जिसे जिन्दगी छीनना ही कहा जायेगा। किसानों के पास 25 कि. मी. तक 11-12वीं के लिए कोई विद्यालय नहीं, जिनकी बच्चियां इसी कारण पढ़ नहीं पातीं, उनके साथ ही ऐसा क्यों?

12 सितंबर को हम हरदा जिले के टप्परगांव में जल-सत्याग्रह में पहुंचे थे, उसी दिन स्थानीय विधायकजी भी इस यात्रा को लेकर आगे बढ़ रहे थे। उन्हें केले में तौला गया था। वे तेंदू पत्ता मजदूरों को बोनस में भी बांट रहे थे। लेकिन हजारों की जिन्दगियों के लिए मौन। लोग इस चुनावी खेल से परिचित लग रहे थे। तीनों जिलों में आंदोलन के वरिष्ठ कार्यकर्ता जल-सत्याग्रह चला रहे हैं, सब छोड़कर वहीं जमे हैं। गांवों से लोग आते हैं। आगे की रणनीति बढ़ती है। गांवों में गणेशजी की स्थापना कर कीर्तन भी करते हैं।

हरदा, देवास, खंडवा जिले में पहले दिन करीब 600 जल-सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया। लोगों के लिए ये सत्याग्रह आंदोलन जेल साल भर के त्यौहार जैसे ही हैं। वे हंसते हुए कष्ट सहते हैं पर लड़ाई नहीं छोड़ते। यदि छोड़ी तो आगे की पीढ़ी के लिए भुखमरी ही रहेगी। लड़ेंगे-जीतेंगे-बढ़ेंगे। ❑

कविता

अन्त्येष्टि

–अमरनाथ झा 'वत्स'

मर जाने के बाद बजे हैं,
ढोल और शहनाई।
नेता आये, अफसर आये,
मानो आज सगाई।
कारों की है लंबी लाइन,
और पुलिस का पहरा।
मंत्री कई खड़े हैं ऐसे,
जैसे वक्त सुनहरा।
उमड़ी भीड़ लगाती क्षण-क्षण,
अमर रहें के नारे।
जिसने जंग कलम से जीती,
आज मौत से हारे।
एक तरफ है लगा सुबह से,
पत्रकार का मेला।
फोटोग्राफर तरफ दूसरी
करते कैसा रेला!
सब हैं कुछ कहने को आतुर
दुःखद मृत्यु के ऊपर।
कभी नहीं जिनको आई सुध
इस रोगी लेखक पर।
शासन ने की शोक-घोषणा
पटना से दिल्ली तक।
यह तो है रूटीन देश का,
कुछ भी नहीं अचानक।
जन के लिए कलम लेकर जो
जीवन भर हैं लड़ते।
पर विडम्बना! अब तो जनकवि
निर्जन घर में मरते।
जिनका है साहित्य जगत् को
सुख की राह दिखाता।
लेकिन वह कर धर्मयुद्ध भी
स्वयं दुःखी रह जाता।
मानवता के लिए लेखनी
जिसकी आग उगलती।
आज चिता उस महामनुज की
पावक में है जलती।
शासन कर ले लाख दिखावा
इस अंतिम आदर का।
लेकिन मैल नहीं जायेगा
सत्ता की चादर का।

❑ द्वारा, सुखचन्द्र झा, लहेरियासराय, दरभंगा-01 (बिहार), मो. 9934872730, ई-मेल : amarnathjhavatsa@gmail.com

गतिविधियां एवं समाचार

हॉलिवुड स्टार गांधी-मार्ग पर : अमेरिका की प्रसिद्ध टाइम मैगजीन ने सितंबर, 2005 के अंक में ऑस्कर अवार्डी गिनीथ पॅल्ट्रो पर एक लेख प्रकाशित किया था, जिसका शीर्षक है 'द सिम्पल लाइफ' अर्थात् सादी जिन्दगी। अमेरिका में कई बुद्धिजीवी सेलिब्रेटी स्टेट्स, धन, कीर्ति और प्रदर्शन के पीछे भाग-भाग कर ऊब चुके हैं, वे सादा जीवन चाहते हैं।

गिनीथ पॅल्ट्रो ने कहा, अब से मैं अमेरिका की युवा पीढ़ी को मूल्यों की याद दिलाने का काम ही करूंगी। मैं उन्हें सुबह जल्दी उठना, टहलने जाना, बचपन से ही रसोई बनाना, मितभाषी एवं मिताहारी कैसे बनना आदि सब सिखाऊंगी। मेरी प्रसिद्धि का उपयोग यही है कि अब मैं अपना शेष जीवन अधिक धन कमाने में नहीं, बल्कि सादा जीवन जीने में और जीवन की तंदुरुस्ती का आनन्द कैसे लेना चाहिए, यह अमेरिकी बच्चों को सिखाने में बिताऊंगी।

गिनीथ पॅल्ट्रो ने एक पत्रकार को साक्षात्कार के लिए अपने घर बुलाया। उसने रसोईघर में जाकर स्वयं पत्रकार के लिए चाय बनायी थी। गिनीथ पॅल्ट्रो ने पत्रकार से कहा, ''पेस्ट्री, बिस्किट व अन्य जंकफूड मैं नहीं खाती हूं, वह तो नहीं परोसूंगी, लेकिन चाहें तो फ्रूट जूस परोस सकती हूं।

पत्रकार से उसने कहा, ईश्वर की मेहरबानी है। इस उम्र में उसने मुझे धन, कीर्ति और प्यारी बच्ची के रूप में अनमोल धन सहित सबकुछ दिया है। मेरे पति अंदर कमरे में मेरी 15 माह की बच्ची को पियानो सिखा रहे हैं। मैं उनके लिए खाना पकाऊंगी, लेकिन उसके पहले हम घूमने जायेंगे। जीवन में मैंने बहुत भाग-दौड़ की है। अब मैं सिर्फ मूल्य-आधारित फिल्मों में काम करूंगी। मैं सादी जिन्दगी जीने का आनन्द लेना चाहती हूं। **–टी. के. सोमैया**

गांधी-पुस्तक प्रदर्शनी

पिछले वर्षों की भांति इस वर्ष भी 'गांधी जयंती' (अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस) के अवसर पर रेलवे स्टेशन के बाहर (सर्कुलेटिंग एरिया में) 'गांधी-पुस्तक प्रदर्शनी' का आयोजन सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी द्वारा किया गया। इस वर्ष भी 2 से 15 अक्टूबर, 2013 तक की अवधि में वाराणसी, मुगलसराय, लखनऊ, सुल्तानपुर, फैजाबाद, इटावा, गया, भोपाल, हबीबगंज, रांची सहित 13 रेलवे स्टेशनों पर गांधी-पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस वर्ष रांची में पहली बार पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की गयी, जिसके उद्घाटन में स्वयं डी.आर.एम. ने शिरकत की थी। उन्होंने हमें निःशुल्क प्रदर्शनी उपलब्ध करायी।

वर्षा एवं चक्रवात के कारण इन प्रदर्शनियों की बिक्री तो प्रभावित हुई, लेकिन गांधी-विचार के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से प्रदर्शनी की उपयोगिता सार्थक रही।

–अशोक भारत,
संयोजक सर्व सेवा संघ प्रकाशन

गांधी जयंती सम्पन्न : गांधी ने कहा था कि ''स्वावलंबी होकर ही प्राकृतिक संसाधनों को बचाया जा सकता है। ग्राम स्वराज की परिकल्पना ही ग्राम संसाधनों को बचाना है।'' ये विचार पर्यावरणविद् डॉ. एस. एम. मोहनोत ने गांधी शांति प्रतिष्ठान, जोधपुर में गांधी जयंती के अवसर पर आयोजित सर्वधर्म प्रार्थना सभा में मुख्य अतिथि के रूप में व्यक्त किये।

कार्यक्रम की अध्यक्षता शहर काजी पेश इमाम मोहम्मद अयूब अंसानी ने कुरान की वह आयत पढ़कर सुनाई, जिसका पाठ गांधीजी की सभा में किया जाता था। आतंकवाद का खात्मा हो और गांधी को सच्ची श्रद्धांजलि है कि हम अहिंसा का मार्ग अपनायें।

प्रैप टाइम स्कूल तथा सरस्वती बाल वीणा भारती स्कूल के बच्चों ने सुंदर प्रस्तुतियां कीं। भुमेश्वरनाथ व्यास ने सर्वधर्म प्रार्थना की। हेना भट्टाचार्या तथा गीता भट्टाचार्या ने गांधीजी के प्रिय भजन व प्रार्थनाएं सुनायीं।

अतिथियों ने गांधी के चित्र पर सूत की माता पहनायी। अतिथियों को स्मृति चिह्न और गांधी साहित्य भेंट किया गया।

संचालन गांधी शांति प्रतिष्ठान के संयुक्त सचिव धर्मेश रूटिया ने किया। डॉ. पद्मजा शर्मा ने अतिथियों को धन्यवाद ज्ञापन किया।

–धर्मेश रूटिया

× × ×

गांधी स्मारक भवन, सेक्टर 16, चंडीगढ़ में गांधी जयंती बड़े श्रद्धापूर्वक श्री के. के. शारदा की अध्यक्षता में मनायी गयी। उपस्थित वक्ताओं ने कहा कि गांधीजी ने सत्य को राजनीति में महत्त्व दिया। सत्य एवं अहिंसा को सम्मान दिलाया। खादी गरीब को रोजगार देती है इसलिए हमें खादी के कपड़े का प्रयोग करना चाहिए। जिन अंग्रेजों से गांधी ने भारत को आजाद कराया आज वे लोग गांधी को ज्यादा मानते हैं तथा उनके विचारों पर रिसर्च हो रही है।

कार्यक्रम का शुभारंभ गांधीजी के प्रिय भजन ''वैष्णव जन तो तेने कहिये'' से हुआ। कार्यक्रम में सामूहिक चर्खा कताई का आयोजन भी किया गया जिसमें गांधी स्मारक भवन के कार्यकर्ताओं एवं देवसमाज कॉलेज सेक्टर 36 की छात्राओं ने भी भाग लिया।

समारोह में क्षेत्र की विभिन्न संस्थाओं, पंजाब खादी मंडल, खादी आश्रम, आचार्यकुल ट्रस्ट, फ्रीडम फाईटर सक्सेसर एशोसिएशन एवं खादी कमीशन के कार्यकर्ताओं ने भी भाग लिया। **–देवराज त्यागी**

बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए उपयोगी है गांधी-विचार

गांधी जयंती पर विद्यालय स्तरीय कार्यक्रम सम्पन्न

सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी द्वारा 'अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस' (गांधी जयंती) के उपलक्ष्य में विभिन्न स्कूल, इंटर कॉलेजों में पिछले एक पखवारे से निबंध, सृजनात्मक लेखन, भाषण तथा तत्क्षण भाषण का आयोजन किया गया, जिसमें कक्षा 6 से 12 तक के छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। जिन विद्यालयों में इन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया उनमें मुख्य रूप से 'श्री वल्लभ विद्यापीठ बालिका इण्टर कॉलेज', 'श्री हरिश्चन्द्र बालिका इण्टर कॉलेज', 'बी. पी. गुजरात विद्या मंदिर इण्टर कॉलेज', 'मदर हेलिमा स्कूल', 'मातेश्वरी बालिका इण्टर कॉलेज', 'सरस्वती इण्टर कॉलेज, 'बाबा हरिराम जूनियर हाईस्कूल', वाराणसी और 'न्यू जयहिन्द पब्लिक स्कूल', 'पूर्व माध्यमिक विद्यालय बहादुरपुर, (चन्दौली) आदि शामिल थे।

निबंध प्रतियोगिता तीन समूह में करायी गयी, जिसका विषय था—'गांधीजी का बचपन', 'गांधीजी के सपनों का भारत' तथा 'गांधी की प्रासंगिकता'।

सृजनात्मक लेखन का विषय था—'मेरे सपनों का भारत', 'कैसे रुके महिला उत्पीड़न' तथा 'वाराणसी जैसा मैंने जाना'। इसी प्रकार भाषण का विषय था—'भ्रष्टाचार रोकने में सत्याग्रह की भूमिका'। इसके अतिरिक्त तत्क्षण भाषण का आयोजन किया गया, जिसे प्रतिभागियों ने खूब पसन्द किया।

2 अक्टूबर, 2013 को 'विनोबा संवाद गृह', सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी में गांधी जयंती एवं पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डॉ. बंशीधर पाण्डेय, कार्यक्रम समन्वयक, राष्ट्रीय सेवा योजना, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ मुख्य अतिथि तथा श्री अतुल श्रीवास्तव, उपप्राचार्य, बसंत स्कूल, राजघाट, वाराणसी विशिष्ट अतिथि थे। कार्यक्रम में गया (बिहार) से वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता कारू एवं उपेन्द्र तथा मणिपुर के टीकेन्द्र भी शामिल हुए। कार्यक्रम की शुरुआत सर्वधर्म प्रार्थना से हुई, जिसका संचालन अशोक भारत ने किया। इससे पूर्व राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चित्र पर अतिथियों ने सूतांजलि अर्पित की।

इस अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम में विभिन्न स्कूलों के छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। सांस्कृतिक कार्यक्रम में कलाकारों ने अपने प्रदर्शन से पूरे माहौल को संगीतमय बना दिया। सरस्वती इण्टर कॉलेज की प्रस्तुति सर्वश्रेष्ठ रही। कलाकारों ने अपनी प्रस्तुति से सबका मन मोह लिया। श्री वल्लभ विद्यापीठ बालिका इण्टर कॉलेज, श्री हरिश्चन्द्र बालिका इण्टर कॉलेज, बाबा हरिराम जूनियर हाई स्कूल तथा बी.पी. गुजरात विद्यामंदिर इंटर कॉलेज की प्रस्तुति भी सराहनीय रही।

श्री बंशीधर पाण्डेय ने कहा कि आज सब लोग भ्रष्टाचार से परेशान हैं। नैतिक मूल्यों में हो रही गिरावट हमारी चिन्ता का कारण है, ऐसे समय में गांधीजी के विचार ही प्रकाश-स्तम्भ हैं। गांधीजी ने अनीति का मुकाबला नीति से और हिंसा का मुकाबला अहिंसा से करना सिखाया। आज दुनिया के समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ यह मानने लगे हैं कि हिंसा, आतंकवाद का मुकाबला अहिंसा से ही सम्भव है। अतुल श्रीवास्तव ने कहा कि बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए गांधी-विचार अत्यन्त उपयोगी है। इस तरह के कार्यक्रम से बच्चों के व्यक्तित्व का विकास होता है। सर्व सेवा संघ का यह प्रयास सराहनीय है। अशोक भारत ने कहा कि 9 विद्यालयों के लगभग 450 छात्र-छात्राएं इसमें शामिल हुए। सबसे अच्छी बात यह है कि सभी बच्चों ने गांधी के बारे में कुछ-न-कुछ पढ़ा है, जो महत्त्वपूर्ण है। कार्यक्रम का उद्देश्य गांधी-विचार के प्रचार-प्रसार के साथ छात्रों के बौद्धिक एवं नैतिक विकास करना है। नयी पीढ़ी गांधी-विनोबा के नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करे, इस दृष्टिकोण से इस कार्यक्रम का आयोजन किया गया है। यह एक सृजनात्मक दृष्टि है, रचनात्मक पहल है।

छात्र-छात्राओं को पुरस्कार के रूप में गांधी साहित्य दिये गये। सभी प्रतिभागियों को प्रमाण-पत्र एवं सहभागिता पुरस्कार भी दिये गये। कार्यक्रम का समापन नीलम की देशभक्ति गीत से हुआ। कार्यक्रम में प्रकाशन एवं राजघाट परिसर के सभी निवासी शामिल हुए। प्रतियोगिता के आयोजन में विद्यालयों के प्राचार्यों का उत्साहजनक सहयोग हमें प्राप्त हुआ। कार्यक्रम को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में परिसर के सुशील कुमार सिंह, तारकेश्वर, अनूप आचार्य, महेन्द्र, नन्दकिशोर, बद्रीभाई आदि का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा।

–अशोक भारत

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600